जीने की कला

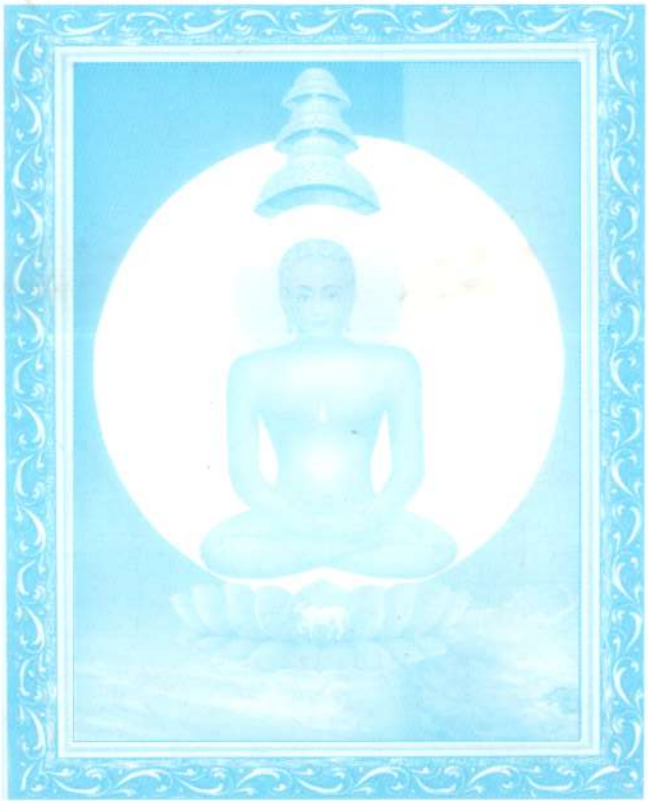

लेखक :
वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

28वां धर्मदर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर के झण्ड़ारोहणकर्ता
न्यायाधीश महेन्द्रकुमार मेहता, डॉ० अरविन्द जैन,
दिनेश जांगा एवं युवा कार्यकर्ता (ग. पु. कॉ. सागवाड़ा)

आचार्य कनकनन्दी के द्वारा द्वय मुनिदीक्षा के शुभावसर पर आ० कनकनन्दी
के ग्रन्थों का विमोचन करते हुए न्यायाधीश प्रकाशचन्द्र, प्रो० प्रभातकुमार, प्रो० सुशीलचन्द्र।
विराजमान है राष्ट्रसंत गणेशमुनि, डॉ० राजेन्द्र मुनि आदि।

जीने की कला

मेरा चार–आयाम सिद्धान्त

भगवान् है मेरा परम–सत्य स्वरूप
सिद्धान्त है स्याद्वाद–अनेकान्त रूप।
सतत साधना है मेरी स्वस्थ–समता
उपलब्धि हो मेरी परम–शान्ति रूपा।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनक नन्दी गुरुदेव

प्रकाशक एवं द्रव्यदाता
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)
धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)
धर्म दर्शन विज्ञान शोध एवं सेवा संस्थान
(उदयपुर)
शाखा–सागवाड़ा

लेखक :– धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

जीने की कला

लेखक :– धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

ग्रंथांक–167

द्वितीय संस्करण–2007

प्रतियाँ–1000

मूल्य–25 रुपये (पुनः प्रकाशनार्थ)

मुद्रांकन :– *मुनि तीर्थ नन्दी*

मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायकः–
मुनि आध्यात्म नन्दी जी
आ. ऋद्धि श्री, प्रो. प्रभात कुमार जैन

मुद्रक :– सीमा प्रिन्टर्स, उदयपुर फोन : 0294–3295406

प्राप्ति स्थान
धर्म दर्शन सेवा संस्थान,
द्वारा– छोटू लाल चितौडा,
चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड,
आयड बस–स्टॉप के पास उदयपुर– 313001(राज.)
फोन नं.– (0294) 2413565. 5561114, Mo.–9887370057
सम्पर्क सूत्र
डॉ नारायण लाल कच्छारा (सचिव) 55,रवीन्द्रनगर उदयपुर 313001(राज.)
फोन (0294) 2491422 मो.9214460622
ई–मेलः nlkachhara@yahoo.com.

नई सदी को बोध देने वाले– आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

साध्वी ऋद्धि श्री (संघस्थ–वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव)

परम वंदनीय वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव वर्तमान युग के प्रभावक धर्मगुरु और विलक्षण प्रखर प्रतिभा के धनी संत महात्मा हैं। जैनधर्म को जनधर्म का व्यापक रूप देकर उसकी गरिमा–महिमा को प्रतिष्ठित करने में अर्हनिश प्रयत्नशील, आगम–अनुसंधान के महत्वपूर्ण कार्य में प्रवृत्त, साधना–शिक्षा–शोध की संगमस्थली, आध्यात्म, नैतिक, सुसंस्कार, सादाजीवन उच्चविचार के पक्ष को उन्नयन करने में दत्तचित्त, वैचारिक क्रान्ति के माध्यम से सत्यग्राहिता, समता, नैतिकता, शिष्टाचार, नम्रता, सज्जनता, परोपकारिता, दया, सेवा, करुणा, वात्सल्य, सहजता–सरलता–मृदुता इत्यादि सद्गुणों की मंदाकिनी को प्रभावित कर वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चारित्र को सुदृढ बनाने की दिशा में जागरूक, प्राणीमात्र के उद्धारक आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव का नाम युग प्रधान प्रभावक आचार्यों की श्रेणी में सहज ही ऊपर उभरकर आता है।

वस्तुतः धर्म–संस्कृति व इतिहास के पृष्ठों में बहुत कम पुरुषों के नाम के आगे 'महात्मा' सम्बोधन लगा है। महाभारतकाल में महात्मा विदुर हुए जो प्रखर विद्वान् और न्याय–नीति शास्त्र के ज्ञाता थे। बाद में महात्मा महावीर और महात्माबुद्ध का अवतरण हुआ जिन्होंने अपनी करुणा, सौम्यता, आध्यात्मिकता और ज्ञान–दर्शन–चारित्र के गुणों से सकल जगत् का मार्ग दर्शन किया। इसके बाद महात्मा फूले ने समाज के दुर्बल–गरीब–दलित वर्ग को वाणी दी। फिर महात्मा गाँधी ने देश को विदेशी दासताओं से मुक्ति दिलाने हेतु सत्य, अहिंसा को प्रमुखता दी। देश को आजादी मिलने के बावजूद भी वर्तमान परिस्थितियों पर चिंतन–मनन–अनुसंधान करने पर लगता है हम भारतवासी पहले की अपेक्षा और अधिक अनैतिकता, असभ्यता, अशिष्टाचार, भ्रष्टाचार, पापाचार, अत्याचार, आतंकवाद, हिंसा, परिग्रह, रिश्वतखोरी, लूटमार, कूटकपट इत्यादि दुष्प्रवृतियों की बेडियों में बंधते जा रहे हैं। ऐसे विषय वातावरण को सुधारने हेतु फिर से महात्मा कनकनंदीजी गुरुदेव अपने बाल्य जीवन से ही प्रयासरत हैं। उन्होंने इस व्यापक कार्य के लिए कभी किसी सरकार, समाज, संस्था से चन्दा–चिट्ठा, धन एकत्रत नहीं किया अपितु अपने विराट एवं चुम्बकीय व्यक्तित्व के बल पर आम जनता को इस महाअभियान में सम्मलित किया है। पूज्य गुरुदेव ख्याति, प्रसिद्धि, यश, प्रदर्शन, लोकेष्णा, वित्तेष्णा से सर्वथा दूर रहकर एवं अपने शिष्य समुदाय को इस महामारी से दूर रखकर सतत सत्कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। आपका दृढविश्वास के साथ मानना है कि हमें ऐसे यश वर्धक कार्य तो करने चाहिए लेकिन यश की लिप्सा नहीं होनी चाहिए। जैसे हमारे तीर्थंकर, ऋषि, पूज्य महापुरुषों

ने यशवर्धक कार्य किये जिनसे उनका यश स्वयमेव प्रकट हुआ। अपनी शुभ्र वैचारिक क्रान्ति एवं सादाजीवन उच्चविचारों के माध्यम से पूज्य गुरुदेव धर्म, समाज व देश में बढ रही विकृतियों को सुधारने में निरन्तर सक्रिय रूप से गतिशील हैं। वे इन सभी कार्यों को बडे ही सहज–सरल रूप से किसी पर बिना दबाव डाले करते आ रहे हैं। यही कारण है कि आज पूज्य गुरुदेव देश–विदेश में धर्म प्रचार, बडे–बडे ग्रंथ लेखन, शिविर–संगोष्ठी, अध्ययन, अनुसंधान इत्यादि कार्य तीव्रगति से व्यापक रूप में कर पा रहे हैं।

पूज्य आचार्य भगवन् का जीवन साधना, संयम, ध्यान, अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान एवं तप का जीवन है। आप सत्य, अहिंसा, अचौर्य, परिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि सिद्धान्तों के सिर्फ दृष्टा ही नहीं अपितु अनेकान्त–स्याद्वाद की प्रयोगशाला के प्रयोगकर्त्ता भी हैं। आप जैन संस्कृति व जैनागमों के ही ज्ञाता नहीं हैं, बल्कि विश्व संस्कृति व सर्व धर्म शास्त्रों के महाज्ञाता हैं। आप समस्त सिद्धान्त सूत्रों की व्याख्या वैज्ञानिक और आधुनिक संदर्भानुसार करते हैं। यही कारण है कि ज्ञानपिपासु व्यक्ति भले ही वह गरीब झोपडी में रहने वाले हों या विशाल महल के वासी अमीर हों, आपकी अमृतवाणी व दिव्य देशना से सदैव लाभान्वित होते रहे हैं, हो रहे हैं और आगे भी होंगे।

पूज्य अचार्य श्री का मानना है कि व्यक्ति को अपने जीवन में सतत आनन्ददायक, सुयोग्य कार्य करने चाहिए, न कि यश, प्रसिद्धि, नाम, सम्मान के लिए अपार धनराशि अपव्यय करना–करवाना, अपनी ख्याति हासिल करने के लिए मठ, मन्दिर, पंचकल्याणक आदि के नाम पर चन्दा, चिट्ठा, धन एकत्रित करना, होर्डिंग, पत्रिका आदि के माध्यम से अति बडा–चढाकर प्रसिद्धि प्राप्त करने की अभीप्सा होना। जैन–जैनेतर सभी धर्मशास्त्रों में इस यश, प्रसिद्धि, ख्याति–लाभ को महापाप बताया है। सभी को अपनी–अपनी मर्यादा, अनुशासन, शालीनता में रहकर सहजता–सरलता से स्व–पर कल्याणकारी, आनन्ददायक कार्य, विचार–व्यवहार करना चाहिए। जिनशासन–जिनश्रुत आदि की प्रभावना भी दूसरों पर दबाव न डालकर, अधिक अर्थ व्यय न करके, बाह्य आडम्बरों की विराट प्रदर्शनी न लगाकर, प्रकृष्ट विचार–व्यवहार द्वारा ही करनी चाहिए। जनसामान्य के बीच छोटे–छोटे ग्रामादि में रहकर भी जनक्रान्ति का महाअभियान चल सकता है। उसके लिए आठ अंग–आत्मविश्वास, दृढइच्छा शक्ति, सतत सत्पुरुषार्थ, ध्यान, अध्ययन, अनुसंधान, सकारात्मक नजरिया, सद्व्यवहार हैं। इन आठ अंगों वाला व्यक्ति दुनिया के बडे से बडे कार्य कर सकता है। वास्तव में पूज्य गुरुदेव की यह वैचारिक क्रान्ति इस युग के लिए एक प्रज्ज्वलित मशाल है जिसके आलोक में तमसाछन्न कुप्रवृतियाँ निश्चित ही विलीन होगी एवं सुप्रवृत्तियाँ आलोकित होकर जगमगायेंगी। वर्तमान व आगामी पीढी पूज्य कनकनंदी गुरुदेव के महानतम अनुदानों व उपकारों को याद करती हुई उनके आदर्शों को अपने जीवन में धारण करके उन्नति के पथ पर अग्रसर होगी।

आमुख

तीन लोक में तीन काल में मानव जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है क्योंकि मानव योग्य सम्यक् पुरुषार्थ से मानव से महामानव एवं महामानव से भगवान् बन सकता है और अयोग्य कुपुरुषार्थ से मानव से दानव, दानव से निगोदिया जीव भी बन सकता है। इसीलिए राजर्षि अमोघवर्ष ने कहा भी है–

किं दुर्लभं? नृजन्मः, यदि प्राप्यते किं च कर्तव्यम्?
आत्महितं दुर्गति संगत्याग, रक्तश्च गुरु वचने।।

विश्व में दुर्लभ क्या है? मनुष्य जन्म मिलना। यदि दैवात् मनुष्य जन्म मिला तो क्या करना चाहिए ? आत्महित, दुर्गति के कारणभूत कुसंगतियों का त्याग एवं स्व पर उपकारी, तरण–तारण गुरु के अमृतोपम वचन में प्रेम करना चाहिए। इसलिए एक हिन्दी कवि ने भी कहा है–

अति दुर्लभ मानव पर्याय, मिले न बारम्बार।
पका आम जो गिर गया, बहुरि लगे न डार।।

ऐसी अत्यन्त दुर्लभ मानव–पर्याय को पाकर उसका सदुपयोग करना मानव का परम कर्त्तव्य है। किन्तु मानव, पुरुषार्थ से स्वयं को समुन्नत नहीं बनाता है, वह स्वयं के जीवन का अवमूल्यन कर लेता है। इतना ही नहीं, जन्मदाता माता–पिता का भी अवमूल्यन कर लेता है। एक कवि ने कहा है–

जननी जनमे ऐसे नर, के दानी के सूर।
नाहीं तो बांझे रहे, काहे गँवावे नूर।।

महान् राजनीतिज्ञ, अर्थनीतिज्ञ एवं नीतिकार चाणक्य ने भी मनुष्यों के कुछ विशेष गुणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया है–

प्रभूतं कार्यमति वा तन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते।। चाणक्यनीति दर्पण श्लोक 16 पृ.4

मनुष्य कितना ही बड़ा काम क्यों न करना चाहता हो, तो उसे चाहिए कि सारी शक्ति लगाकर वह काम करे, यह गुण सिंह से ले।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः।
देशकालबल ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।।17

समझदार मनुष्य को चाहिए कि वह बगुले की तरह चारों ओर से इन्द्रियों को समेटकर और देश काल के अनुसार अपना बल देखकर सब कार्य साधे।

प्रत्युत्थानञ्च युद्धश्च संविभागञ्च बन्धुषु।
स्वयंमाक्रम्य भुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।।18 पृ.46

ठीक समय से जागना, लड़ना, बन्धुओं के हिस्से का बंटवारा और छीन–झपट कर (पुरुषार्थ कर) भोजन कर लेना, ये चार बातें मुर्गे से सीखे।

गूढ़मैथुनचारित्रं काले काले च संग्रहम्।
अप्रमत्तमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात्।।19

एकान्त में स्त्री का संग करना, समय–समय पर कुछ संग्रह करते रहना, हमेशा चौकस रहना और किसी पर विश्वास न करना, ये पांच गुण कौए से सीखना चाहिए।

बहाशी स्वल्पसन्तुष्टःसनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः।।20

अधिक भूख रहते भी थोड़े में सन्तुष्ट रहना, सोते समय होश ठीक रखना, स्वामीभक्ति और बहादुरी, ये गुण कुत्ते से सीखना चाहिए।

सुश्रान्तोऽपि वहेत् भारं शीतोष्णं न च पश्यति।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणी शिक्षेच्च गर्दभात्।।21

भरपूर थकावट रहने पर भी बोझा ढोना, सर्दी गर्मी की परवाह न करना, सदा सन्तोष रखकर जीवनयापन करना, ये तीन गुण गधे से सीखने चाहिए।

एतान् विंशतिगुणनाचरिष्यति मानवः।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति।।22

जो मनुष्य ऊपर गिनाये बीस गुणों को अपना लेगा और उसके अनुसार चलेगा, वह सभी कार्यों में विजयी रहेगा।

मानव वस्तुतः ज्ञान–विज्ञान, सदाचार, आध्यात्मिक एवं उदार गुणों के कारण ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यदि मानव होकर भी उपर्युक्त गुणों से रहित होगा तो वह मानव न होकर मानवाकार दानव पशुतुल्य हो जाएगा। महान् नीतिकार भर्तृहरि ने भी कहा है–

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।13 पृ.82

जिन पुरुषों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, सौजन्य और गुण इनमें से कुछ भी नहीं है, वे मृत्युलोक में पृथ्वी के भार स्वरूप होकर मनुष्य रूप में साक्षात् मृग की तरह विचरते हैं।

साहित्य संगीत कला विहीनः,
साक्षात्पशुः पुच्छविषाण हीनः।
तृणन्नखादन्नपि जीवमान्नरः
तद्भागधेयं परमं पशुनाम्।।12 भर्तृहरिशतक पृ.82

जो मनुष्य साहित्य और संगीत की कला को नहीं जानते, वे बिना सींग और पूंछ के साक्षात् पशु हैं। इस तरह के पशु जो घास न खाकर जीवन्त रहते हैं, यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

मनुष्य तब महान् बनता है जब वह अनेक महान् गुणों को जीवन में आत्मसात् कर लेता है। ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी महापुरुषों के बारे में वर्णन करते हुए भर्तृहरि ने कहा भी है :–

मनसि वचासि काये पुण्यपीयूषपूर्णा
स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुण परमाणुन्पर्वती कृत्य नित्यं
निजहृदिविकन्तः सन्तिसन्तःकियन्तः।।79 भर्तृहरिशतक पृ.111

जिनके मन, वचन और शरीर पुण्य रूपी अमृत से परिपूर्ण हैं, परोपकार द्वारा तीनों लोक को प्रसन्न करने वाले हैं, दूसरों के छोटे से छोटे गुण को पर्वताकार मानकर आनन्दित होने वाले हैं ऐसे सज्जन कितने हैं।

मनुष्य कुछ संस्कार पूर्व जन्म से लेकर के आता है और कुछ हद तक पूर्व संस्कार जीवन को प्रभावित करता है। परन्तु पुरुषार्थी। उद्यमशील पूर्व के संस्कार का ही दास बनकर नहीं रहना चाहता है। वह योग्य प्रबल–पुरुषार्थ से वर्तमान के कुसंस्कार के साथ–साथ पूर्वभव के कुसंस्कार को भी चुनौती देता है। ऐसा व्यक्ति ही जीवन में उन्नति की–चरम सीमा तक पहुँच सकता है। नीतिकारों ने कहा भी है:–

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।। 27

अधम श्रेणी के लोग विघ्न के भय से कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग कार्य प्रारम्भ कर देते हैं, परन्तु विघ्न उपस्थित हो जाने पर उसे छोड देते हैं, उत्तम श्रेणी के लोग कार्य प्रारम्भ करने के बाद विघ्नों से बराबर सताये जाने पर भी वे कार्य को बीच ही में छोडते नहीं, उसे पूरा करके ही छोडते हैं।

अशक्यमिति संभाष्य कर्म मा मुञ्च दूरतः।
उद्योगो वर्तते यस्मत् कामसूः सर्वकर्मसु।।1 कुरल–काव्य पृ.62

यह काम अशक्य है, ऐसा कहकर किसी भी काम से पीछे न हटो, कारण? पुरुषार्थ अर्थात् उद्योग प्रत्येक काम में सिद्धि देने की शक्ति रखता है।

सामिकार्य न कुर्वीत लोकरीतिविशारदः।
तद्विधात्रे यतः कोऽपि स्पृहयेन्न सचेतनः।।2

किसी काम को अधूरा छोडने से सावधान रहो; कारण? अधूरा काम करने वालों की जगत् में कोई चाह नहीं करता।

न जहाति विपत्तौ यः सान्निध्यं तस्य गौरवम्।
सेवारूप निधिन्यासाल्लभ्यते तत् सुदुर्लभम्।।3

किसी के भी कष्ट के समय उससे दूर न रहने में ही मनुष्य का बड़प्पन है और उसको प्राप्त करने के लिए सभी मनुष्यों की हार्दिक सेवारूप निधि (धरोहर) रखनी पड़ती है।

अनुद्योगवतो नूनमौदार्यं क्लीबखंगवत्।
यतस्तयोर्द्वियोर्मध्ये नेकं चास्ति चिरस्थिरम्।।4

पुरुषार्थहीन की उदारता, नंपुसक की तलवार के समान है, कारण? वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती।

सुखे रतिर्न यस्यास्ति कामना किन्तु कर्मणः।
आधारः स हि मित्राषां विपत्तावश्रुमार्जिकः।।5
उद्योगशीलिता लोके वैभवस्य यथा प्रसूः।
दारिद्र्याशक्तियुग्मस्य जनकोऽस्ति तथालसः।।6

उद्योगशीलता ही वैभव की माता है, पर आलस्य दारिद्र्य और दुर्बलता का जनक है।

आलस्यं वर्तते नूनं दारिद्र्यस्य निवासभूः।
गतालस्यश्रमश्चाथ कमलाकान्तमन्दिरम्।।7

कंगाली का घर निरुद्योगिता है, लेकिन जो आलस्य के फेर में नहीं पड़ता उसके परिश्रम में लक्ष्मी का नित्य निवास है।

नापि लज्जाकरं दैवाद् वैभवं यदि नश्यति।
वैमुख्यं हि श्रमात् किन्तु लज्जायाः परमं पदम्।।8

यदि मनुष्य कदाचित वैभवहीन हो जावे तो कोई लज्जा की बात नहीं है, परन्तु जानबूझकर मनुष्य श्रम से मुख मोडे, यह बड़ी ही लज्जा की बात है।

वरमस्तु विपर्यस्तं भाग्यं जातु कुदैवतः।
पौरुषन्तु तथापीह फलं दत्ते क्रियाजुषे।।9

भाग्य उल्टा भी हो तो भी, उद्योग श्रम का फल दिये बिना नहीं रहता।

शश्वत्कर्मप्रसक्तो यो भाग्यचक्रे न निर्भरः।
जय एवास्ति तस्याहो अपि भाग्यविपर्यये।।10

जो भाग्यचक्र के भरोसे न रहकर लगातार पुरुषार्थ किये जाता है, वह विपरीत भाग्य के रहने पर भी उस पर विजय प्राप्त करता है।

संसार का प्रत्येक प्राणी मरने के बाद निश्चित रूप में जन्म लेता है और जीवन जीता है। ऐसा जीवन तो संसार के प्रत्येक प्राणी को कर्म परतंत्रता के कारण जीना ही पडता है, भले वह जीव पेड–पौधे, कीडे–मकोडे क्यों न हो। केवल जीना महत्व की बात नहीं है परन्तु आदर्शमय, उन्नतशील, शान्तमय जीवन जीना महत्व की बात है। दीपक यदि धुआं छोडता हुआ दीर्घकाल तक जीवित रहें तो उसका कोई महत्व नहीं परन्तु यदि दीपक कुछ क्षण भी प्रकाश करता हुआ बुझ जाता है तो उसका महत्व है। इसी प्रकार जीवन रूपी दीपक यदि पराधीनता, दीनता, अज्ञानता, अनैतिकता आदि धुआँ से व्याप्त होता हुआ दीर्घकाल तक जीवित रहता है तो उसका कोई विशेष महत्व नहीं है, परन्तु आत्मगौरव, आत्मज्ञान, आत्मसंयम, सदाचार, परोपकार आदि प्रकाश से व्याप्त होता हुआ कुछ क्षण जीवित रहता है तो उसका महत्व बहुत अधिक है। इसलिए महान् विचारक गेटे ने कहा था कि– **" एक व्यर्थ जीवन ही शीघ्र मृत्यु है।"**

सतत प्रगतिशील ही जीवन है एवं आलसी होकर दुर्भाग्य का रोना रोते हुए पडे रहना मृत्यु है। अभी तक विश्व में जो बडे–बडे महापुरुष हुए, वे आपत्तियों के साथ, विपत्ति के साथ संघर्ष करके ही उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुँचे हैं। इसलिए कभी भी विपत्तियों को केवल अभिशाप मानकर खोटा भाग्य का रोना नहीं चाहिए क्योंकि हम यदि कर्म का रोना रोएंगे तो कर्म और ज्यादा रुलाएगा। कर्म से घबराएंगे तो कर्म और ज्यादा कष्ट देगा। पूर्ण संकल्प शक्ति से, परम–पुरुषार्थ से यदि कर्म को ललकारेंगे तो कर्म भयभीत होकर भाग खडा होगा। इसलिए संकट केवल मनुष्य के लिए अभिशाप नहीं है वरन् संकट मनुष्य को सचेत करता है, प्रेरणा देता है, आगे बढने के लिए उत्तेजना भरता है। जैसे– गेंद को जितना जोर से पटकते हैं उतनी ही जोर से गेंद ऊपर की ओर उछलती है।

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः।
प्रायेण साधु वृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः।।86 भर्तृहरि शतक पृ. 0114

हाथ से नीचे पटकी हुई भी गेंद ऊपर ही ऊपर उछलती रहती है। इससे मालूम पडता है कि सज्जनों की विपत्ति स्वल्प काल तक ही रहा करती है।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बंधुर्य कृत्वा नावसीदति।।187

मनुष्य के शरीर में रहने वाला आलस्य उसका सबसे बडा शत्रु है और पुरुषार्थ के बराबर कोई मित्र भी नहीं है, जिसके करते रहने पर मनुष्य दुःख नहीं पाता।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्र।
इति विमृशन्तः संतप्यन्ते न ते विपदा।।18

कटा हुआ पेड पुनः बढने लगता है और क्षीण चन्द्रमा भी पुनः बढने लगता है, इस नीति को समझते हुए सज्जन विपत्ति में भी दुःखी नहीं होते हैं।

कर्मायत्तं फलं पुन्सां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया कार्य कर्त्तव्यं सुविचारतः।।90

मनुष्यों के सुख–दुःख उनके पूर्वकृत कर्म के आधीन हैं और बुद्धि भी कर्म के अनुसार कार्य किया करती है। फिर भी बुद्धिमान को समझ–बूझ कर कार्य करना चाहिए।

महान् समाज–सुधारक–सन्त गुरुनानक ने कहा था– जीवन की मंजिल पर रो–रोकर चलना पुरुष का अपमान है। इसका रहस्य यह है कि किसी भी परिस्थिति में हतोत्साहित होकर नपुंसक के समान कार्य करना पुरुषार्थ एवं पुरुष का अपमान है। अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवैल्ट ने कहा था, "मैं अत्यन्त सरलता से जीवनयापन की शिक्षा नहीं देना चाहता, अपितु मैं एक कठिन श्रमशील जीवन की शिक्षा देता चाहता हूँ।"

महापुरुष के अनुभव से शिक्षा प्राप्त करके, स्व अनुभव से जो लक्ष्य निर्धारित

किया जाता है, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अविचलित रूप से आगे बढते ही जाना चाहिए। दुनिया में अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं। बुरे कार्य की प्रशंसा करने वाले और अच्छे कार्य की निन्दा करने वाले भी। इसी प्रकार अच्छे कार्य की प्रशंसा करने वाले भी हैं और उदासीन रहने वाले भी हैं।

मेरा विचार, अनुभव एवं निर्णय यह है कि दूसरों की सहमति होने की अनिवार्यता नहीं है अथवा स्वयं की सहमति अन्य के साथ होने की अनिवार्यता नहीं है, परन्तु स्वयं की मति–सन्मति हो इसकी अनिवार्यता है। कहने का भावार्थ यह है कि स्वयं की मति, भावना, कार्यप्रणाली तथा उद्देश्य यदि सत्य, तथ्य एवं न्यायपूर्ण है, तब हमें कोई सहमति दे, सहायता करे, प्रोत्साहन दे तो ठीक है अथवा विरोध करें तो ठीक है अथवा विरोध करें तो भी परवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि **"णाणा जीवा णाणा कम्मं, णाणा विह हवे लद्धि"** अर्थात् विश्व में नाना प्रकार के जीव हैं, इसके कारण उनकी बुद्धि भी अनेक प्रकार की है। इसलिए दूसरों की रुचि अनुसार स्वयं का कार्य करना, विवेकशीलों का कार्य नहीं है परन्तु जो सत्य, तथ्य एवं सविवेक पूर्ण कार्य है, उसको जरूर करना चाहिए। चिन्तनशील नीतिकारों ने कहा है–

निन्दतु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।84 भर्तृहरि शतक पृ.113

नीति निपुण विद्वान निन्दा करें अथवा स्तुति, लक्ष्मी प्राप्त हो अथवा पास की भी चली जाए, आज ही मृत्यु हो अथवा एक युग बाद, परन्तु गम्भीर पुरुष न्याय मार्ग से च्युत नहीं होते।

बर्टन ने भी यथार्थ में कहा था कि जिन्दगी में सबसे बड़ी गलती हम तब करते हैं जब हम दूसरों की ही राय पर खुश रहने लगते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि अपनी क्षुद्र स्वार्थ सिद्धि के लिए मनमाना करते हुए दूसरों के सदुपदेश को नकारते हुए दूसरों को कष्ट पहुँचाना है परन्तु मेरे कहने का मतलब यह है कि स्वार्थी, अज्ञानी, मदान्ध, व्यक्तियों की निन्दा व प्रशंसा की परवाह नहीं करते हुए अपने पथ पर आगे बढना चाहिए।

रोहतक चातुर्मास की अवधि में मेरे अनेक उपदेश हुये थे। उन उपदेशों में से **'जीने की कला'** पर भी उपदेश हुआ था। इस पुस्तक में 'जीने की कला' तथा 'उत्तम मार्दव' का संकलन है। उपदेशों का संकलन यहाँ की मेरी धार्मिक शिष्याओं ने किया है उन्हें मेरा आशीर्वाद है तथा द्रव्यदाता को मेरा आशीर्वाद है। इस **'जीने की कला'** पुस्तक को पढकर उसके अनुसार जीना सीखें जिससे उनका जीवन सुन्दर, आदर्शमय, संगीतमय बने ऐसी शुभकामनाओं के साथ–

आचार्य कनकनन्दी
(प्रथम संस्करण–1993)

विषय–सूची

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	जीने की कला	12
2.	उत्तम मार्दव	27
3.	समस्या–रोग के कारण अन्ध–आधुनिकता निवारक है सरल जीवन आध्यात्मिकता।	44
4.	अब्रह्मचर्य की प्रतिक्रिया है प्रदूषण से लेकर महाप्रलय (भविष्य की पृथ्वी एवं भारत का पूर्वानुमान)	51
5.	उपवास का स्वरूप एवं लाभ–हानि (धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से)	55
6.	प्रतिभावान् बनने हेतु इसे जाने–माने–अपनाये! सर्वोदय शिक्षा के विविध आयाम	59
7.	जैन धर्म का आध्यात्मिक–वैज्ञानिक – विश्वशान्तिकर स्वरूप	65

अध्याय –1

जीने की कला

धर्मात्मा बन्धुओं ! मैं आज **"जीने की कला"** के बारे में दो शब्द बताऊँगा। 'जीने की कला' माने 'ART OF LIVING'. इससे पहले (भाषण से पहले) मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। प्रत्येक देश में, प्रत्येक जाति में कुछ महापुरुष होते हैं। इसी प्रकार यूनान में एक महापुरुष हुए जिनका नाम सुकरात था। सुकरात भी प्राचीनकालीन एक महापुरुष थे, जो महावीर के समकालीन थे, कल मैंने बताया था, सुकरात अंतरंग में गुणी, महान् ज्ञानी होते हुए भी बहिरंग/शारीरिक संरचना में अत्यंत विकृत थे। नाटे कद के, काले रंग और विकृत शरीर वाले। पहले ऐसे ही होता था कि तीर्थंकर और महापुरुष को छोड़कर जो अंतरंग विभूति से सहित होते हैं वे शरीर से प्रायः कम सुन्दर होते हैं। जैसे – कालिदास, अष्टावक्र, सुकरात आदि। तो भी जैसे फैशन परस्त व्यक्ति रोज दर्पण देखते हैं उसी प्रकार सुकरात रोज दर्पण देखते थे। दर्पण से अपना मुख देखते थे। देखने में तो भूत के जैसे और नाटे कद के थे तो भी वे रोज दर्पण देखते थे। उनका जो Friend (मित्र) था उनको कौतूहल हुआ। वो सोचे सुकरात, दिखने में तो अत्यन्त विकृत और असुन्दर है, तो भी ये जैसे फैशनदार व्यक्ति रोज दर्पण देखते हैं, उसी प्रकार ये रोज क्यों दर्पण देखते हैं ? कौतूहल हुआ और एक दिन जाकर के साहस बटोरकर के पूछते हैं कि आप रोज दर्पण क्यों देखते हैं ? क्योंकि ऐसा होता है ना, जो नाटा रहता है, बदसूरत रहता हो उसे दर्पण दिखाने पर वो चिढता भी है क्योंकि स्वयं के दुर्गुण स्वयं नहीं देखना चाहते हैं। परन्तु सुकरात एक महापुरुष थे। वे बोले "मैं इसलिए दर्पण से अपना मुख देख रहा हूँ जिससे मेरा जो बाह्य कुरूप है, अंतरंग सुरूपता से छिप जाये।" मैं आध्यात्मिक उन्नति इतनी करूँ, नैतिक उन्नति इतनी करूँ जिसके सामने जो बाह्य कुरूपता है वो स्वयमेव विलीन हो जाये। जैसे–.चन्द्रमा में रोशनी रहने के कारण चन्द्र का कलंक वि ोष दिखाई नहीं देता है, इसी प्रकार मैं इतनी उन्नति करूँ और अन्तःकरण को सद्गुणों से इतना भर दूँ कि जिसके कारण मेरा कुरूप ही दिखाई न दे। उसके साथ–साथ सुकरात ये भी बोले "मैं स्वयं कुरूप हूँ इसलिए मैं दर्पण देखता हूँ, क्योंकि मैं कुरूप को सुगुण से छिपा देना चाहता हूँ, परन्तु जो सुरूपवान, सुन्दर कामदेव के समान व्यक्ति होते हैं उन्हें भी दर्पण देखना चाहिए।" तो उनके दोस्त ने पूछा क्यों? स्वयं सुन्दर हैं, उन्हें दर्पण देखने की क्या आवश्कता है ? आप बताएं ? मैं कुरूप हूँ। मैं अंतरंग में इतना सुगुण प्रकट करूँ जिसके कारण मेरा कुरूप छिप जावे, परन्तु स्वयं सुन्दर हैं, उन्हें दर्पण देखने की क्या आवश्यकता हैं? सुकरात बोले, "ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो बाह्य में देखने में बगुले के जैसे होते हैं, परन्तु आचार, विचार, गति–विधि, कृति से कैसे ? बगुले के जैसे। जो सरूपवान् हैं, उन्हें दर्पण इसलिए देखना चाहिए कि मैं देखने में तो सुन्दर हूँ परन्तु मेरा अंतरंग स्वरूप है वह दानवाकार है, कि मनुष्याकार,

सुगुण है कि दुर्गुण है ऐसे अन्दर को देखना चाहिए।" कहने का मतलब यह है बहिरंग सुरूप और कुरूप कब सुरूप और कुरूप होता है? जब हमारा अंतरंग भी सुरूप और कुरूप होगा अर्थात् केवल हम बहिरंग से कोई देखने में सुन्दर व सभ्य, भद्र, धर्मात्मा दिखेंगे तो उसका मतलब ये नहीं है कि वो धर्मात्मा हो, व सुगुणी हो व जीने की कला को जानता हो। ऐसा नहीं। जैसे चीन में भी एक महान् पुरुष हुए हैं, लोएत्से। लोएत्से बहुत ज्ञानी थे और जब उनका मरण का समय हुआ तब उनके सब शिष्य आकर बोलते हैं गुरुदेव! अन्तिम समय में कुछ संदेश देकर जाइये क्योंकि अन्तिम संदेश अधिक महत्वपूर्ण होता है। **"अन्तः गता, सो गता"** इसी प्रकार विचार करके लोएत्से मुख फाड़ कर रह गये। ऐसे ही मुख फाड़ कर दो–तीन मिनिट ऐसे ही रहे। शिष्य फिर बोलते हैं, अनुनय विनय करते है गुरुदेव! कुछ अन्तिम संदेश तो दीजिये। फिर मुख फाड लिया, इसी प्रकार दो तीन बार किया। शिष्य वर्ग को कुछ समझ में नहीं आया कि हम तो उपदेश के लिए बोल रहे हैं किन्तु हमारे गुरुदेव लोएत्से केवल मुख फाड़ के हमको देख रहे हैं।

परन्तु जो ज्ञानी व्यक्ति होते हैं, केवल वचन से उपदेश नहीं देते हैं। विशेषकर के ज्ञानी लोग कृतित्व से, कृति से, गतिविधियों से अधिक उपदेश देते हैं। हमारे यहाँ पर भी आया है कि जो दिगम्बर साधु होते हैं वे मुख से भी अधिक मौन उपदेश कृति से, शरीर से देते हैं। इसी प्रकार जो महापुरुष होते हैं कृति से ही अधिक उपदेश देते हैं, वचन से नहीं। जैसे महात्मा गांधी के पास कुछ विद्यार्थी गये और बोले कि हमें कुछ उपदेश दीजिये। महात्मा गांधी बोले मेरा कृतित्व ही, मेरी कृति ही तुम लोगों के लिए उपदेश है।

जितने बड़े–बड़े महापुरुष हुये, हम लोगों के जैन धर्म में ही नहीं, हिन्दु धर्म से लेकर बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म तक देख लीजिये जितने बड़े–बड़े महापुरुष हुए, धर्म प्रचारक हुए उन्होंने स्वयं ग्रंथ की रचना नहीं की है। स्वयं तीर्थंकर ने भी ग्रन्थ की रचना नहीं की है। पैगम्बर "हजरत मुहम्मद" ने भी ग्रन्थ की रचना नहीं की है। ईसामसीह ने ग्रन्थ की रचना नहीं की है। किसी भी महापुरुष ने नहीं की है। क्यों? महापुरुष चलते–फिरते कृति होते हैं। इसीलिए महापुरुष कम बोलते हैं और कृति से ही अधिक उपदेश देते हैं। तो लोएत्से बार बार मुख फाड़ते रहे। उन लोगों को कुछ समझ में नहीं आया क्योंकि कल मैं बोला था कि स्वयं महावीर भगवान् अनंत ज्ञान को प्राप्त करने के बाद भी, अनंत शक्तियों को प्राप्त करने के बाद भी कितने दिन तक उपदेश नहीं दिये? 66 दिन तक उपदेश नहीं दिये। क्यों? उपदेश को स्वीकार करने के लिए भी पात्रता चाहिये जैसे सामान्य दूध आप सामान्य बर्तन में रख सकते हो, परन्तु शेरनी के दूध के लिए मिट्टी का पात्र अथवा लोहे का पात्र अथवा तांबे का पात्र, यहाँ तक कि स्टील का पात्र भी क्या योग्य होगा? उसमें यदि एक Drop (बूँद) दूध गिरेगा तो वो पात्र टुकड़े टुकड़े हो जायेगा। इसी प्रकार महापुरुष के वचन, उपदेश सुनने के लिये पात्रता की आवश्यकता होती है। तो उन्होंने केवल मुख फाड़

लिया किन्तु उन लोगों को समझ में नहीं आया। अन्त में वे लोग बोलते हैं कि गुरुदेव आप ऐसी मजाक क्यों कर रहे हो? कुछ उपदेश दीजिये ना। लोएत्से बोले कि मैं तो जब आप लोग बोले कि उपदेश दीजिये तब से ही मैं उपदेश दे रहा हूँ। इस भाषा का अध्ययन शायद आप लोग नहीं कर पा रहे हैं। क्योंकि भाषा अनेक प्रकार की होती है। जैसे चित्र लिपि, अंक लिपि, देवनागरी लिपि, ब्राह्मी लिपि आदि अनेक लिपि होती हैं, उसमें एक सांकेतिक लिपि भी होती है। तो वो सांकेतिक लिपि से उपदेश दे रहे थे। वो बोले कि क्या उपदेश दे रहे हैं? देखो, मेरे मुंह में दाँत है क्या? शिष्य वर्ग देखते हैं कि दाँत नहीं हैं। मेरे मुंह में जीभ है क्या? उन्होंने पूछा। हाँ, जीभ तो है। अच्छा बताओ, जीभ का जन्म पहले हुआ अथवा दाँतों का जन्म पहले हुआ। जीभ का जन्म पहले हुआ कि नहीं? जन्म से ही जीभ रहती है। फिर दाँतों का जन्म कुछ दिन के बाद होता है। अच्छा बताओ, दाँतों की संख्या अधिक है या जीभ की संख्या अधिक है? किसकी संख्या अधिक हैं? दाँतों की। दाँतों की संख्या 32 है और जीभ संख्या में केवल एक है। बताओ अधिक कठोर, शक्तिशाली दाँत हैं या जीभ? दाँत कठोर और जीभ कोमल है। बताओ किसने दो बार जन्म लिया? दाँतों ने जन्म लिया दो बार या जीभ ने? दाँतों ने दो बार जन्म लिया। पहले एक बार जन्म लेकर के फिर मर जाते हैं, माने गिर जाते हैं। फिर जन्म लेते हैं या नहीं ? तो दांतों ने दो बार जन्म लिया। देखो, संख्या में अधिक, दो बार जन्म लिये और अधिक कठोर भी ये हैं तो भी हमारे मुख में एक भी दाँत जीवित है क्या? ये दाँत और जीभ क्या उपदेश दे रहे हैं? ये दाँत और जीभ जीने की कला का उपदेश दे रहे हैं। कैसे ? दाँत दो बार जन्म लेते हुए भी संख्या से अधिक होते हुए भी, वज्र के समान कठोर होते हुए भी वो सब गिर गये, नष्ट हो गये, टूट गये। परन्तु जीभ संख्या में एक होते हुए भी, कोमल होते हुए भी, एक बार जन्म लेते हुए भी अभी तक जिन्दा है; क्यों? वे मृदु, विनम्र, नम्र है। इसलिये जीवन में ये दाँत और जीभ ये शिक्षा देते हैं कि जीवन में जो नम्र हो, जो विनयशील हो, जो सदाचारी हो, जिसका आचार–विचार लचीला हो, इलास्टिक हो, वहीं 'जीने की कला' जानता है। अहंकारी लोग जल्दी टूट जाते हैं। जैसे दुर्योधन आदि। जो लचकदार हो, जीवन में सफल हो जायेगा। उसको ही जीने की कला आती है। वो ही जी सकता है और जो कठोर हो वो बार–बार जन्म भी लेगा और कठोर से कठोर होते हुए भी मिट जायेगा। दुर्योधन के समान, रावण के समान, हिटलर के समान, मुसोलिनी के समान टूट जायेगा, नष्ट हो जायेगा। कोई भी जिन्दा नहीं रहेगा। इसीलिए जीने की कला प्रकृति के प्रत्येक कण हमें सिखाते हैं परन्तु हम विद्यार्थी नहीं, मास्टर बनते हैं। हमारे महाराज बोले रहे थे ना, उस दिन के पहले जो विद्यार्थी आते हैं शिक्षार्थी आते हैं तो विद्यार्थी हो करके, शिष्य हो करके, चेला हो करके। आते तो हैं चेला हो करके और आने के बाद बन जाते हैं गुरु। गुरु गुड़ बन जाते हैं और शिष्य शक्कर बन जाते है। वे शिष्य गुरु के भी गुरु बन जाते हैं। माने अहंकारी बन जाते हैं। मेरी एक प्रतिज्ञा है (अनेक प्रतिज्ञाओं में से एक प्रतिज्ञा ये भी है) बाल्यावस्था में

मैंने प्रतिज्ञा ली थी कि मैं जीवन भर बालक रहूँगा और जीवन भर विद्यार्थी रहूँगा। जब तक हम बालक नहीं रहेंगे, हम गुरु को स्वीकार नहीं कर सकते। आप लोगों को मालूम होगा हमारे संघ में ज्यादा बाल–विद्यार्थी हैं। माने कम उम्र के और वृद्ध विद्यार्थी भी हैं। आप लोगों को मैं एक Practical ज्ञान बता रहा हूँ। मैं Theoretical ज्ञान को कोई महत्व नहीं देता हूँ। किताब बहुत पढ़ता हूँ, परन्तु ये Theoretical ज्ञान है, उनको मैं मानता हूँ केवल चित्र का आम व चित्र का कुंआ। जैसे चित्र का आम तो कोई खा नहीं सकता, उसका कोई Taste नहीं है। इसी प्रकार चित्र के कुँए से कोई पानी नहीं ले सकता और पी नहीं सकता है। इसी प्रकार पुस्तक ज्ञान यथार्थ ज्ञान नहीं है, जब तक उसमें अनुभव नहीं होगा। अनुभव ही सर्वोपरि है। अनुभवविहीन सब पुस्तकीय–ज्ञान केवल कोरा ज्ञान है। उसमें कोई महत्व नहीं। मैं कुछ अनुभव की बात बताऊँ। बालक अधिक ज्ञान कर लेते है, सीख लेते हैं, क्यों ? हमारे संघ में भी छोटे विद्यार्थी जितना पढते हैं, एक दिन में जितना पढते हैं; उतना वृद्ध विद्यार्थी एक वर्ष में भी नहीं पढ़ पाते हैं। उसके अनेक कारण हैं। मैं आगे जाकर के मस्तिष्क की कार्य–क्षमता तथा संस्कार के बारे में बताऊँगा। आयु बढ़ने पर मस्तिष्क मृदु से कठोर हो जाता है। इसके साथ–साथ अहंकार हो जाता है। मैं रोज बोलता हूँ, आठ प्रकार के मद हैं। हमारे आचार्य ने कहा है परन्तु आठ प्रकार के मद में अन्य कुछ मद गर्भित किया गया है। जैसे– आयु का मद। कुछ आदमी की आयु अधिक होने पर ही वे स्वयं को सर्वोपरि मान लेते हैं, दूसरे की बात को स्वीकार नहीं करते हैं। वे कभी भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। बच्चे में अधिक गुण ग्राहकता व अनुकरण प्रियता होती है। तो मैं क्या बोला था। ये प्रकृति के हर कण हमको उपदेश देते हैं। जैसे हिन्दु धर्म में एक पुराण है–भगवत् पुराण। भगवत्पुराण में ऋषभ देव का वर्णन है, जैसे हमारे जैन धर्म में है। भगवत् पुराण में ऋषभ देव बोलते हैं कि मेरे 21 गुरु हैं। तो उनके शिष्य पूछते हैं कि कौन–कौन? वो बोलते हैं कि सूर्य, वायु, नदी, सर्प, आदि ये उदाहरण देते हैं। क्योंकि ऋषभदेव स्वयंबुद्ध थे। वे पूर्व संस्कार से ज्ञानी थे।बचपन से ही वे उपदेश स्वीकार करते थे। हमको प्रकृति बहुत पढाती है परन्तु हम पढ़ नहीं पाते हैं क्योंकि हमको प्रकृति की भाषा मालूम नहीं है। हम केवल काले अक्षर जो पढ रहे हैं, अनादि काल से और Schools, College में जा करके। काले–काले अक्षर पढकर के ज्ञानी मान लेते हैं स्वयं आपको। ये ही सबसे बड़ी भूल है। तो मैं क्या बोला था, "प्रकृति के प्रत्येक कण जो हमको उपदेश देते हैं यदि हमको वो भाषा आती है पढने के लिए, वो लिपि आती है तो हम बहुत कुछ पढ सकते हैं।" तो दाँत क्या उपदेश देते हैं कि तुम जीवन में कठोर मत बनो, गर्वी मत बनो। यदि बनोगे तो टूट जाओगे, मिट जाओगे। जैसे दुर्योधन। दुर्योधन पक्ष में 100 भाई थे और स्वयं भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य आदि महारथी थे, तो भी सब मिट गये। क्यों मिट गये? क्योंकि अहंकारी थे। इसीलिये लोएत्से बोलते हैं कि जीवन में सीखो "जीने की कला" जीवन में नम्र बनो, सदाचारी बनो और उदार बनो। तब तुम जी सकते हो, नहीं तो, मिट जाओगे। ये हुआ

इनका उपदेश। इसीलिये हमारे यहाँ पर कहा है, हमारे आचार्य ने कहा है, प्रत्येक दिन, प्रत्येक दिवस विचार करना चाहिये। क्या विचार करना चाहिए?

प्रत्यहं प्रत्वेक्षते नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यः किन्नु सत्पुरुषैरिति।

हमारे आचार्य ने कहा है, जैन आचार्य ने कहा, "प्रत्यहं प्रत्यवेक्षते" प्रत्येक दिन सतत विचार करना चाहिये और क्या विचार करना चाहिए? शोध–बोध करना चाहिये। किसका? जड़ों का, बाह्य वस्तु का? नहीं। बाह्य वस्तुओं का जानना बहुत हो चुका है। शोध बोध हो गया है। परन्तु स्वयं का शोध बोध, अन्वेषण नहीं हुआ। इसलिए स्वयं का अन्वेषण करना चाहिये। जड़ शव है और जीव शिव है। अभी वैज्ञानिक लोग किसका शोध–बोध कर रहे हैं? केवल शव का, जड़ का। परन्तु शिव का शीघ्र बोध कौन करते हैं? केवल ज्ञानी, साधु, धर्मात्मा लोग। तो हमारे आचार्य ने कहा 'नरश्चरितमात्मनः' जो महापुरुष होते हैं वे सतत स्वयं का अन्वेषण करते हैं। क्या विचार करते हैं ? 'किनु मे पशुभिस्तुल्यः किन्नु सत्पुरुषैरिति'। मैं कितने अंश में कितने गुण में, कितने कार्य में पशुतुल्य हूँ। क्योंकि प्रत्येक मानव के अन्दर पशुत्व भी है, देवत्व भी है मानवता, भी है, और दानवता भी है। जैसे इंगलिश में बोलते हैं, "Human, Non-Human, Sub-Human and Super-Human." प्रत्येक मानव में ये चारों प्रकार रहते हैं। जैसे मनोविज्ञान में कहा गया है कि ego. ed. Super ego. इसी प्रकार प्रत्येक मानव में ये रहता है। हमारे यहाँ पर आध्यात्मिक शास्त्र में कहा गया है बहिरात्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा। बहिरात्मा पशुत्व नहीं,, पशुत्व का सूचक नहीं परन्तु बहिरात्मा दानवता का सूचक है। आप लोग बोल सकते हो, कैसे महाराज? हमारे यहाँ पर आध्यात्मिक शास्त्र में देवों (Havenly being) से भी पशुश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि देवों के गुणस्थान ज्यादा से ज्यादा कितने हो सकते हैं ? 'चार' और पशु के गुणस्थान पाँच। इसीलिये हम जिसको पशु बोलते हैं, वह गाली नहीं, क्योंकि पशु आप जैसे सामान्य लोगों से श्रेष्ठ हो सकते हैं। आप लोग आध्यात्मिक गुणस्थान में आध्यात्मिक दृष्टि सकते हो परन्तु एक पशु जो आध्यात्मिक दृष्टि से जागृत है, वह आपसे भी श्रेष्ठ हो सकता है। घबराओ नहीं! कहा है दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक शुद्ध मनुष्य, दूसरा मिश्र मनुष्य।

आप लोग कौन से मनुष्य हैं ? आप लोग स्वयं विचार–विमर्श करिये। अशुद्ध हो? शुद्ध हो ? अथवा मिश्र हो ? जो संयमी हो, सकल संयमी हो, माने षट्गुणस्थानवर्ती हो, निर्ग्रन्थ साधु हो वे मनुष्य हैं। जो मिथ्यादृष्टि, बहिरात्मा, पापी है, वह अशुद्ध मनुष्य। पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक मिश्र मनुष्य है क्योंकि उसमें कुछ अंश पशुत्व है और कुछ अंश मनुष्यत्व। माने पंचम गुणस्थान तक पशुत्व और छटे गुणस्थान से मनुष्यत्व प्रारम्भ होता है और जो प्रथम गुणस्थानवर्ती है वो सब दानव है। मनुष्याकार में दानव। जैसे कहा गया है ना–

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभार भूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

"येषां विद्या" जो विद्याध्ययन नहीं करते हैं। कौन सी विद्या नहीं। अक्षर की विद्या का कोई महत्व नहीं है। क्योंकि बोलते हैं ना, मैंने अनुभव भी लगाया और सही भी है जैसे इंगलिश में बोलते है" "Who have little mind, he proud of own position."

जो कम बुद्धि वाले होते हैं और जो गम्भीर, गहन चिन्तन नहीं करते हैं वो जैसे छोटी–छोटी मछलियाँ कम पानी ही में फुदक–फुदक करती रहती हैं ना, इसी प्रकार जो 10–20 रुपया जेब में रख लेते हैं । A,B,C, D पढ़ लिये, एक दो डिग्री प्राप्त कर लिए व एक–दो बार सभा में माला पहन लिए व एक बार सत्ता मिल गई, ऐसे व्यक्ति Half mind is very dangerous. ये जो Half mind होते हैं बहुत dangerous होते हैं। इसलिए हमारे साधु को मैं रोज बोलता हूँ, "तुम लोगों को अध्ययन करना है, किसी भी विषय का, केवल धर्म का नहीं, गणित भी है, विज्ञान भी है, किसी भी विषय का अध्ययन करना है तो गहनता से अध्ययन करो, नहीं तो उसको दूर से ही छोड़ दो। क्यों? जैसे बोलते हैं ना "अधजल गगरी छलकत जाये और भरी गगरी चुपकत जाये"। इसी प्रकार किसी भी क्षेत्र में जो कम बुद्धिवान होते हैं, निम्नश्रेणीय होते हैं, जिनका व्यक्तित्व गौरवपूर्ण नहीं है, उछलापन है, वो अधिक अंहकारी होंगे। वो जानते नहीं हैं, यथार्थ क्या है ? इसलिए कौन सी विद्या ? अक्षर की विद्या नहीं है, यथार्थ विद्या। उपनिषद् में बताया–विद्या किसको बोलते हैं ?

"सा विद्या या विमुक्तये" जिस विद्या को हम प्राप्त करके समस्त बन्धन को तोड़ करके शाश्वतिक सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं, वही विद्या है, अन्य विद्या नहीं है। अभी की विद्या कौन सी है ? **"सा विद्या या भुक्तये"** अभी की विद्या केवल पेट के लिए है, रुपये के लिए है। मैं तो हमारे जो विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों को बोलता हूँ, जो हमारे पास आते हैं, कि तुम क्यों पढ़ते हो, मालूम है क्या ? उसका मनोवैज्ञानिक कारण क्या है ? लड़कियाँ क्यों पढ़ती हैं ? ज्यादातर लडकियाँ इसलिए पढ़ती हैं कि जल्दी ठीक से शादी हो जावे और लडके क्यों पढ़ते हैं ? अधिक दहेज मिले। अरे वाह! आगे जाकर के किसी के नौकर बनें। मैं बोलता हूँ High-court, Supreme- Court के जज तक नौकर ही नौकर हैं। वो भी नौकर है Refind नौकर। एक झाडू देने वाला Rough नौकर है, गंदा नौकर है और Supreme Court का जज वो भी एक Refind नौकर है। प्रधानमंत्री भी क्यों न हो। ठीक विद्या बन्धन नहीं सिखाती है। जो विद्या बन्धन सिखायेगी, वो विद्या, विद्या नहीं। जो विद्या समस्त बन्धन को तोड़ करके वास्तविक सुख और शान्ति को दे सकती है वो ही विद्या हैं, नहीं तो सब कुविद्या है। इसलिये एक कवि ने कहा है–

पौथी पढ़–पढ़ जग मुआँ पंडित भया न कोय।
ढाई अखर आत्म (प्रेम) का पढ़े सो पंडित होय।।

"पोथी पढ़–पढ़ जग मुआँ पंडित भया कोय।" पुस्तक पढ़ता–पढ़ता सब जग मुआँ, ये जगत/दुनियाँ सब पगली बनी हुई है। परन्तु ढ़ाई अक्षर आत्मा का,जिसने स्वयं का अध्ययन किया, स्व+ अध्ययन किया वही तो स्वाध्याय है। जिसने कर्त्तव्य का अध्ययन किया, अपना कर्तव्य किया। विचार करना मैं कौन ? जैसे कहा बाईबल में ईसामसीह ने "know thy self. At first you know, who are you ? what are your duties" आप लोग जानते हैं कि आप कौन हैं? कोई बोलेगा मैं वकील हूँ, मैं जज हूँ, मै किसान हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं लडका हूँ, मैं लडकी हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, नहीं ये सब उपाधियाँ हैं, ये सब विकार हैं, ये सब बन्धन हैं। ये तुम नहीं हो, तुम कौन? तुम सब शिव हो, भगवान् हो, मगंलमय हो, आनन्दमय हो। तुम सब अमृत के पुत्र हो। तुम केवल अमृत के पुत्र नहीं किन्तु तुम स्वयं अमृत हो। तुम भगवान् हो। तुम सब बच्चे भगवान् हो, जो अन्दर बैठा हुआ है। जैसे बीज में बृहत्काय वृक्ष निहित है, उसी प्रकार तुम्हारे अन्दर बीज–स्वरूप में तुम्हारी भगवान् आत्मा बैठी हुई है। उस आत्मा को जानो। तुम स्वयं भगवान् हो। जिसने स्वयं को निर्माण करने की कला नहीं जानी, जिसने स्वयं को जानने का अध्ययन नहीं किया वो विश्व का समस्त साहित्य अध्ययन करे तो भी वो मूर्ख शिरोमणि है। जैसे एक zero (0) रखे कोई value (कीमत) नहीं। दो zero (0) रखे कोई value नहीं, तीन जीरो रखे कोई value नहीं। The value of zero (0) is zero. The multiple of the zero is also zero. The addition of zero also zero. The divided of the zero also zero. zero को Multiply (गुणित) करिये, Plus करिये Result क्या आयेगा Zero ही Zero परन्तु Zero के left hand side में एक रख लीजियेगा। तो उस Zero का मूल्य बढ जायेगा। एक (0) रख दीजिये 10, दो जीरो रख दीजिये 100 हो जाता है इसी प्रकार जिसने स्वयं को जान लिया, स्वयं के कर्त्तव्य व्यवहार को और स्वरूप को जान लिया, वे सब जान लिया और जिसने स्वयं के बारे में नहीं जाना, स्वयं के कर्त्तव्य व्यवहार के बारे में नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। इसीलिये कहाना 'जग मुआँ' जगत में मूर्ख बन गये सब। 'ढाई आखर आत्म का पढे सो पंडित होय' इसीलिये कहा ना, "सा विद्या या विमुक्तये"। विद्या अध्ययन करना चाहिये जिससे हम बन्धन को तोड़ सकें। अभी तो मैं देखता हूँ अधिक बन्धन में पड़ने के लिये पढ़ते हैं ना कि शिक्षा प्राप्त करतें हैं। आरा में पढ़ा रहा था साधुओं को तब एक बूढ़ी माता जी आती हैं और बोलती हैं कि महाराज हमारा लड़का पूछ रहा था कि आप इतना पढ़े–लिखे हो करके भी आप साधु क्यों बने ?

मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे लड़के को भेज देना। नहीं महाराज! वो नहीं आता आपसे पूछने के लिये डरता है। वो आयेगा या नहीं आप उत्तर दे दीजिये, मैं उत्तर दे दूँगी। मैं बोला, मैं इसीलिये पढ़ा नहीं, कि में आगे जाकर बन्धन में पड़ूँ और दूसरों का नौकर बनूँ। मैं मालिक बनने के लिये पढ़ा था। इसलिए मालिक बना। साधु को छोड़ करके दुनिया में सब कोई मुझे नौकर ही नौकर नजर आते हैं। और कोई भी क्यों न हो? क्योंकि–

आशा दासी कृतं येन तेन दासीकृतं जगत्।
आशाय यो भवेद्दास; स दास सर्व देहिनाम्।।

गुणभद्र स्वामी ने आत्मानुशासन में कहा कि दास कौन और मालिक कौन? आप सोचते होंगे–आप मिल मालिक हो या मालिक बन गये। आप क्या ? धनकुबेर देश का जो धनकुबेर था हैनरी फोर्ड । हैनरी फोर्ड एक दिन भाषण दे रहा था अपने मजदूरों के सामने। क्या भाशण कर रहा था मालूम है? आप लोग तो ज्यादा से ज्यादा करोडपति, अरबपति होंगे परन्तु अमेरिका के साधारण व्यक्ति भी तो धनकुबेर होंगे आपके जैसे। वहाँ धनकुवेर कौन ? जैसे हैनरी फोर्ड। वह मजदूरों के सामने भाशण कर रहा है कि यदि आप लोगों का जीवन मुझे मिल जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगा। सब मजदूर बैठे थे। तो एक मजदूर खडा हो करके पूछता है कि आप ऐसा क्यों बोल रहे हैं ? आप तो मालिक हो और हम लोग सब servant हैं। नहीं–नहीं यथार्थ से मैं servant हूँ क्योंकि हाथ केवल रुपया लिखने, जमा करने में ही रहता है और मेरा मुख केवल Hello-Hello कहने में और कान Telephone सुनने में ही व्यस्त रहता है। यहाँ तक कि मै जब शौच के लिये जाता हूँ तो भी वहाँ फोन लगा रहता है। वहाँ भी Hello-Hello करता रहता हूँ। Hello-Hello करते–करते मेरा जीवन भी Hellow हो गया, खाली हो गया। इतना ही नहीं ये जो फैक्ट्री है, इसे मैं चालू नहीं कर रहा हूँ परन्तु फैक्ट्री मुझे चालू करे रही है। मानव, आज यन्त्र को नहीं चला रहा है परन्तु मानव यंत्रचालित बन गया। आज केवल भौतिक दृश्टि से आप स्वाधीन हो परन्तु व्यावहारिक दृश्टि से, मानसिक दृश्टि से आप स्वाधीन नहीं, पराधीन हो। इसीलिये कहा कि **'येशां न विद्या न तपो न दानं'**। जिसने तपस्या नहीं की, तपस्या माने क्या? माने आत्म उन्नति के लिये त्याग करना, पुरुशार्थ करना ये तपस्या है। **'तपो न दानं'** जिसने दान नहीं दिया और ज्ञान प्राप्त नहीं किया और अध्ययन नहीं किया और शील पालन नहीं किया वे कौन ? **'ते मर्त्यलोके भूविभारभूताः'** भूमि के लिये भार स्वरूप हैं। जैसे दुर्योधन था, हिटलर था, सद्दाम हुसेन जैसे। वो केवल रहते ही भार स्वरूप हैं। **'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'** वो मनुश्य आकृति पशु हैं। क्यों, आप बोलियेगा कैसे पशु ? क्योंकि नीतिकार ने कहा है –

आहार निद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम्।
धर्मः विशेषः खलुमानवानाम् धर्मेण हीना पशवोः मानवः।।

पशु भी भोजन करता है, आप लोग भी भोजन करते हो। क्या अन्तर है ? आप लोगों से भी अधिक भोजन करता है पशु । आप लोग तो एक दिन में एक बार में एक किलो–दो किलो खाते हो। पशु तो क्विंटल–क्विंटल खा लेते हैं। जो अधिक खाता है वो महान् नहीं हैं। जैसे आहार निद्राभयमैथुनानि पशु भी लेते हैं आप लोग भी लेते हो, मैथुन संज्ञा–प्रजनन क्रिया पशु में भी है और तुम लोगों में भी है। "सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम्" ये जो प्रवृतियाँ हैं ये सब मनुश्य और पशु में समान हैं। ये कोई मानवीय प्रवृतियाँ नहीं हैं। ये निम्न श्रेणी ego stage की प्रवृतियाँ हैं। इसके

आगे कुछ हैं जो मानवीय प्रवृतियाँ हैं। ये पशु में और मनुश्य में समान हैं, बराबर हैं परन्तु "धर्मः विशेशः खलु मानवानाम्" धर्म, और विवेक ज्ञान ही है जो मनुश्य और पशु में अन्तर करता है। और विवेकरहित, ज्ञानरहित और धर्मरहित मनुश्य कौन ? **ते मर्त्यलोके भविभारभूताः।** वह इस मृर्त्यलोक में भू पृश्ट पर, धरती पर भार स्वरूप है। कुछ महापुरुश उत्पन्न होते हैं जो भार को मिटाते हैं। जैसे राम, कृश्ण, महावीर ये सब क्या हैं ? वे भार को हल्का करने वाले थे। परन्तु ऐसे भी बहुत जन्म लेते हैं जो भार स्वरूप होते हैं। **"मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति"** मनुश्य आकार के केवल पशु हैं। इसीलिये हमारे यहाँ पर कहा गया कि ये कोई मानव की कृति नहीं हैं। इसीलिये हमारे यहाँ पर सम्यक्दृश्टि असंयमी को भी शुद्ध मनुश्य नहीं कहा क्योंकि ऐसे मनुश्य में सम्यक् होने के बाद भी संयम नहीं हैं। नरक में चतुर्थ गुणस्थान रहता है। इसीलिये चतुर्थ गुणस्थान नारकी हैं। यदि हम आध्यात्मिक दृश्टिकोण से देखेंगे तो असंयमी मनुश्य भी एक प्रकार नारकी है क्योंकि नारकी गुणस्थान ज्यादा से ज्यादा चार है। पशु का गुणस्थान पांच है क्षुल्लक, ऐल्लक तक आधे पशु आधे मनुष्य है क्यों ? क्षुल्लक लोग कपडे धारण कर रहे हैं क्योंकि क्षुल्लक भी अभी बहिरंग परिग्रह को स्वीकार कर रहा है। शुद्ध मनुश्य–मुनि की बात है। सामान्य बात नहीं हैं, सिद्धान्त–शास्त्र की बात है। ये सामान्य किताब में नहीं मिलती है–न समयसार में, न अन्य दर्शन में, किसी में नहीं है। फिर जब मनुष्य पूर्ण संयमी बन जाता है, पांचों पापों को पूर्ण रूप से त्याग कर लेता है माने control कर लेता है और इंद्रियों को संयमी कर लेता है और स्वयं में स्थिर हो जाता है तब वो शुद्ध मनुश्य बनता है और शुद्ध मनुश्य ही, साधु ही, यथार्थ से 'जीने की कला' को जानते हैं। साधु का मरण ही यथार्थ से मरण है, आप लोगों का मरण यथार्थ से मरण नहीं। क्यों? जो मरने की कला नहीं जानता वो जीने की कला को भी नहीं जानता। इसीलिये जब बैरिस्टर चंपतराय विदेश से हमारे देश वापिस हो रहे थे क्योंकि रोग हो गया था। तो वहाँ के कुछ उनके दोस्त बोले कि यहाँ तो बडे–बडे डॉक्टर हैं और भारत में रोगी होने पर कोई यहाँ आते हैं और आप अभी इंग्लैण्ड से भारत जा रहे हो, क्या कारण है ? बैरिसटर चंपतराय बोलते हैं कि यहाँ पर जीने की कला, मरने की कला किसी को मालूम नहीं हैं। भारत में ही, भारतीय लोगों को मालूम है कि कैसे मरते हैं ? विदेश में कैसे मरते हैं मालूम नहीं वो लोग कीडे–मकोडे के जैसे मरते हैं और जिन्हें मरने की कला मालूम है, वो जी सकता है। क्यों ? कायर लोग प्रतिक्षण मरते हैं, कायर लोग जीवन में बार नहीं मरते हैं। मूर्ख लोग, अज्ञानी लोग, अधर्मी लोग, जीवन में प्रत्येक क्षण मरते हैं। वे जी ही नहीं सकते हैं। क्योंकि दो प्रकार मरण होता हैं। आविची मरण और तद्भव मरण। हम लोग प्रत्येक क्षण मरण की ओर बढ रहे हैं। जैसे इंगलिश में बोलते हैं 'time and tide wait for none समय हम लोगों के लिये कभी प्रतीक्षा नहीं करता है। हम लोग प्रत्येक क्षण कैसे मरते हैं ? जैसे तरंग निकलती है, एक तरंग के बाद दूसरी तरंग निकलती है। उसी प्रकार हम लोग प्रत्येक समय मरते जाते हैं। कोई बोलता है कि मेरा लडका दस वर्ष

का हो गया। वह दस वर्श का नहीं हुआ; तुम्हारा लडका दस वर्श का मर गया। मान लो 100 वर्श की आयु थी तो 10 वर्श नश्ट हो गया। और वह 90 वर्श का हो गया। जैसे बोलते हैं कि वह बडा आदमी हो गया। बडा आदमी नहीं, छोटा हो गया। क्योंकि आयु घट गयी क्योंकि जो आयु कर्म बंधता है, उसके प्रत्येक समय में एक–एक निशेक खिरता जाता है, उसे आविची मरण कहते हैं। इसीलिये प्रत्येक समय हम मरण की ओर बढ रहे हैं। इसीलिये कायर लोग प्रत्येक समय मरते हैं। परन्तु जो वीर पुरुश होते हैं, वीर पुरुश कौन? मालूम है ? धर्मात्मा लोग वीर पुरुश होते हैं। अन्य लोग तो कायर होते हैं, क्यों? कोई जन्म से डरते हैं, कोई मरण से डरते हैं, कोई परिवार से डरते हैं, कोई सरकार से डरते हैं, कोई साहूकार से डरते हैं, कोई वकील से डरते हैं, कोई चोर से डरते हैं, सब भयाकुल हैं दुनियाँ में। परन्तु एक ही व्यक्ति जो निर्भय है, जिसने सब कुछ त्याग दिया, जिसने आशा को भी अपना दास बना लिया। सब कोई किसके दास हैं ? आशा के दास। सम्पूर्ण विश्व आशा का दास है। कोई किसी का दास हो सकता है परन्तु पूरा विश्व तो आशा का दास है। परन्तु इसी प्रकार विश्व का मालिक जो आशा है उस आशा को भी जिसने दास बना दिया दासी बना लिया वो ही जीवन में एक एक बार मरता है। नहीं तो बार–बार मरते हैं। इसीलिये कहा ना, हम लोगों को ऐसे जीना चाहिये, ऐसे जन्म लेना चाहिए, जैसे–

जब तुम जग में आये, जग हँसा तुम रोय।
अब ऐसी करनी करो तुम हँसो जग रोय।।

माने जब हम जन्म लेते हैं तो दुनियाँ के लोग हंसते हैं। मेरे पुत्र का जन्म हुआ उत्सव मनाते हैं और बच्चा उस समय काऊँ–काऊँ करके रोता है। परन्तु जन्म लेन के बाद ऐसी करनी चाहिये, ऐसे अच्छे कर्म करोगे तो जब तुम मरोगे जग तो रोयेगा और तुम हँसोगे। माने ऐसे कार्य करने चाहिये जो कि हमारे मरने के बाद सब कोई अनुसरण करे। देखो, रामायण में राम का भी नाम है और रावण का भी। जब तक राम का नाम रहेगा तब तक रावण का भी नाम रहेगा ही परन्तु एक नाम कैसे और दूसरे का नाम कैसे? हम तो राम का नाम गौरव से लेते हैं, भक्ति से लेते हैं, श्रद्धा से लेते हैं और रावण का नाम कैसे लेते हैं ? श्रद्धा से लेते हैं क्या ? घृणा दृश्टि से लेते हैं। सब कोई जीते हैं परन्तु जीने की कला मालूम नहीं है। जीना कैसे है उसके लिये एक उदाहरण देता हूँ।सामान्य व्यक्ति सोचते हैं कि हम दूसरों का शोशण करके धनी बन जायेंगे और सुखी जीवन यापन करेगे। मैं अभी एक ग्रीक की कथा बताता हूँ सुनो!

दो भाई थे। एक बहुत सरल, सादा, धर्मात्मा और एक बहुत कुटिल, उद्दण्ड और शक्तिशाली और बुद्धि जीवी। दोनों में वाद विवाद चला। क्या वाद–विवाद चला ? जो बडा भाई था–बोला अन्याय से ही जीवन सुखमय होता है, अन्याय से ही उन्नति होती है। छोटा भाई तो धार्मिक था वो बोला कि धर्म से ही, सदाचार से ही जीवन सुखमय होता हैं। दोनों का वाद–विवाद चला, किसी ने किसी

की बात को स्वीकार नहीं किया तो अन्तिम निर्णय हुआ "हम दोनों ऐसा करेंगे कुछ व्यक्ति को पूछेंगे और वे व्यक्ति जो निर्णय देंगे, उसी निर्णय पर हम लोग जो हमारा धन है, उसे जो जीतेगा, वे सब ले लेगा।" दोनों चले। रास्ते में जाते–जाते एक बैल के साथ भेंट हो गई। बैल को दोनों पूछते हैं कि बताओ न्याय से सुख मिलता है या अन्याय से? बैल एक दम बोला कि अन्याय से सुख मिलता है क्योंकि मैं दिन–रात, बरसात में, सर्दी में, परिश्रम करता हूँ और मेरा मालिक मुझे घास–फूस दे देता हैं कभी तो देता नहीं और मालिक ठाठ–बाठ से बैठकर के मजा उडाता है। इसी से सिद्ध होता है। एक बार विजय युक्त हो गया, अन्याय पक्ष वाला। फिर एक कुली के साथ भेंट हो जाती है। उसको पूछतें हैं कि बताओ न्याय से सुख मिलता है कि अन्याय से? वो बोलता है कि अन्याय से। क्यों, हम इतना परिश्रम करते हैं परन्तु मालिक सब शोषण कर लेता है, हम लोगों को धन नहीं देता है और पूँजीपति बन जाता है, माल–मसाला उडाता है और हम लोगों को रोटी भी नहीं मिलती है देखे, दो बार विजय–युक्त हो गया। आगे बढने पर एक व्यापारी के साथ भेंट हो गयी। व्यापारी को पूछते हैं कि अन्याय से सुख मिलता है कि न्याय से ? वो बोलता है कि यदि हम न्याय से व्यापार करें तो व्यापार ही नहीं चलता है। दस रुपये का माल यदि हम ग्यारह रुपये का बोलते हैं तो कोई नहीं लेता है। दस रुपये का माल यदि बीस रुपये का बोलते हैं और पन्द्रह रुपये में देते तो सब लेते हैं। इसीलिये न्याय से नहीं चलता, अन्याय से चलता है। फिर आगे बढे तो एक राजा के साथ भेंट हो गयी। राजा भी बोलता है कि अन्याय से? क्योंकि जब तक हम दूसरे देश पर आमक्रमण नहीं करेंगे तो देश की सीमा वृद्धि नहीं होगी, धन सम्पत्ति ज्यादा नहीं होगी। इसीलिये अन्याय से ही ज्यादा सुख मिलता है। चारों बार जय युक्त हो गया बडा भाई / छोटा भाई हार गया। सब धन–सम्पत्ति छीन लिया केवल एक कुटी दे दी और कुछ नहीं। कुछ दिन के बाद एक पर्व (उत्सव) आया। घर–घर में उत्सव होने लगा। सब मिठाइयाँ बनाने लगे। नये–नये कपडे पहनने लगे तो उनसे छोटे भाई के बच्चे थे वे लोग भी रोने लगे मिठाई के लिये, कपडों के लिये तो छोटे भाई की जो धर्म पत्नी थी वह बोलती है कि जाइये बडे भाई के पास कुछ ले आओ और हमारे बच्चे कुछ खायेंगे, ये करेंगे, वो करेंगे। तो वो जाता है। उसके पास कुछ नहीं था। अपने शरीर को लेकर के जाता है और बोलता है कि आज पर्व का दिन है कुछ आटा, चीनी, शक्कर कुछ दे दो और हम लोग मिठाई बनायेंगे और बच्चों को खिलायेंगे व हम खायेंगे और उत्सव मनायेंगे। वे बोले कि नहीं, कुछ धरोहर रखो और धरोहर रखने के बाद ही हम कुछ देंगे। उनके पास क्या था धरोहर रखने के लिए ? बोले कि तुम्हारे पास तो तुम्हारा शरीर है। शरीर के कुछ अंग दे दो। तुम्हारी एक आँख मुझे दे दो। तो तुझको कुछ अन्न देंगे। चाकू लाता हैं और एक आँख निकाल देता है। उस आँख को रख लेता है और उसको दो–तीन सेर आटा दे देता है वह जाकर एक–दो दिन खाता है। फिर कुछ दिन बाद पर्व आया। फिर वे भाई के पास जाता है, फिर दूसरी आँख रख लेता है, निकाल

करके। फिर उसको बोलता है कि जाओ ये आटा आठ–दस किलो ले जाओ। हो गया तुम्हारा काम। वह वापिस हो गया। फिर कुछ दिन बाद खाने के लिए नहीं रहा। उसने क्या किया ? एक कटोरी ले के जाता था बाजार में बैठता था। जो कुछ भिक्षा में मिलता था उसको लाकर, खाकर ही जीवन यापन करते थे। एक दिन आँधी आई। जिसके कारण उसकी पत्नी जाकर उन्हें वापिस नहीं ला पाई। वो रास्ता भूल गया और जंगल पहुँच गया। जंगल में एक पेड के नीचे बैठ करके कुछ विचार कर रहा था, चिन्ता कर रहा था। वो सोच रहा था क्या सचमुच ही अन्याय से सुख मिलता है? कदापि नहीं। ये तो कभी नहीं हो सकता है। इसी प्रकार विचार कर रहा था तो कुछ आवाज आई। क्या सुन रहा है? एक पूछ रहा है। वे भूत का सरदार था। पूछता है कि, हे भूत! आज क्या क्या काम करके आये? तो एक भूत बोलता है कि जो राजकुमारी है, उसे हमने अंधा बना दिया। दूसरा भूत बोलता है कि एक गाँव का सब पानी मैंने सुखा दिया। भूत सरदार बोलता है कि अरे, कौन सा बडा काम तुमने कर दिया ? अरे, ये पेड के नीचे की जो ओस है ना, ये औस लेकर यदि कोई राजकुमारी की आँख में डाल देगा तो राजकुमारी की दृष्टि–शक्ति आ जायेगी और उस गाँव में एक पत्थर है। उस पत्थर को कोई उठा देगा तो वहाँ पानी का स्रोत उमड पडेगा। तुमने क्या बहुत बडा काम कर लिया परन्तु ये बात तुम किसी को बताना मत, नहीं तो कोई ऐसे कर लेगा तो तुमने जो सब काम किया, वह व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि जो दुष्ट व्यक्ति होते हैं वे दूसरों को कष्ट देकर ही संतुष्ट होते हैं। उन्हें ही "विघ्न संतोषी" कहते हैं। वहाँ नीचे कौन बैठा हुआ था ? बडा सज्जन व्यक्ति था। उसने सब सुन लिया। वो जाकर परीक्षा करने के लिए ओस उठाता है और आँख में लगाता है। आँख में लगाते ही आँख आ गई। फ़िर सोचता है कि अरे मेरे जैसे दुःखी प्राणी जो होंगे उनका उपकार करना चाहिये। क्योंकि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे दूसरों का उपकार करके ही खुश होते हैं और जो दुर्जन मनुष्य होते हैं, वे दूसरों को कष्ट देकर ही सुखी होते हैं। जो कटोरी थी उसके पास, उस कटोरी में वो ओस भर लिया और निकल गया। जाते–जाते जिस गाँव के सब जलाशय को सुखा दिया गया था, वहाँ एक बुढिया कलश में पानी भर कर के ला रहीं थी। वे प्यासा था ही, बोला कि माँ जी थोडा पानी दो। मैं पीऊँगा, खूब प्यास लग रही है। बुढिया बोलती है "बेटा मेरे बच्चे प्यासे हैं बहुत दिन से यहाँ पानी नहीं है, मैं दूर से पानी लाती हूँ इसीलिये मैं तो पानी नहीं दे सकती हूँ। तो बोलता है, कोई बात नहीं। तुम थोडा सा पानी दे दो तो यहाँ पानी पानी हो जायेगा। बुढिया से पानी पीकर के उसको शक्ति आ जाती है। आदमियों को बुलाता है और ले जाता है एक जगह में, जहाँ एक पत्थर था। जहाँ वह भूत बोला था कि पत्थर को उठाते ही पानी निकल जायेगा। वहाँ सब जाते हैं, वहाँ एक पत्थर था उसको उठा लिया। उठाते ही स्रोत उमड पडा। पानी ही पानी हो गया। सब खुशहाल ही खुशहाल। फिर आगे बढा। सब ढूँढ रहे उस गुणी को, परन्तु गुणी लोग जो उपकारी लोग होते हैं वे नेकी कर और कुँआ में फेंक के होते हैं। जो महान् व्यक्ति होते हैं

वो उपकार केवल आत्म–संतोष के लिये तथा उपकार के लिये करते हैं, न कि दिखाने के लिये। प्रत्युपकार के लिये नहीं करते हैं। प्रत्युपकार के लिए करते हैं तो उसका फल कम हो जाता है। फिर राजधानी में वे ही चर्चा की राजकुमारी अचानक अंधी कैसे हो गई? बडे–बडे डॉक्टर आये। करोडों–अरबों रुपये खर्च हुआ। तो भी आँख नहीं आ रही, दृष्टि–शक्ति नहीं आ रहीं ऐसी चिन्ता पूरे साम्राज्य में, राजधानी में है। केवल चिंता की छाया ह। वह जा कर के पूछता है, भाई! क्या हो गया है ? एक राजकुमारी फटाक से अंधी हो गई। करोडों–अरबों रुपये खर्च हो गये और दृष्टि–शक्ति नहीं आ रही है। क्या किया जावे? कोई बात नहीं। मुझे राज–दरबार में पहुँचा दो। अरे, तुम्हें राजदरबार में कैसे पहुँचायेंगे? अभी वहाँ बडे–बडे डॉक्टर आ रहे हैं, अभी वहाँ कोई नहीं जा सकता। नहीं–नहीं एक मिनट के लिए एक क्षण के लिए मुझे वहाँ पहुँचा दो। फिर द्वारपाल जाता है और राजा से बोलता है कि एक व्यक्ति है। वह ऐसे–ऐसे बोलता है कि मैं राजकुमारी को ठीक कर दूँगा। तो क्या उसको आने दूँ? राजा बोले कि हाँ, आने दो। तो वो आता है। ओस लगाते ही उसकी दृष्टि शक्ति आ जाती है। खुशी। राजा बोलता है कि मेरी लडकी को मैं तुमको देता हूँ और आधा राज्य तुमको देता हूँ। वे बोलता है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो उपकार की दृष्टि से ये सब काम कर लिया। मुझे तो अभी जाना है। हमारे बच्चे सब हैं, हमको देखते होंगे। तो राजा खुशी हो करके ऊँट के ऊपर, हाथी के ऊपर, घोडे के ऊपर, एक दम धन–सम्पति लाद दिया। जितना ले सकते हो लो, फिर वे सब उसके घर पर पहुँचा दिया। जब सब धन सम्पति मिल गयी तो पहले से भी बहुत बडा सेठ बन गया। जब सेठ बन गया तो उसका भाई देखता है कि अरे, वह तो गरीब था और अँधा था, खाने के लिये भी रोटी भी नहीं मिल रही थी और अभी करोडपति–अरबपति बन गया। मुझ से भी अधिक धनी बन गया। ये कहाँ से धन सम्पत्ति लाया। फिर उसके घर आता है। जब भाई भी गरीब हो जाता है तो बहन भी नहीं पूछती है माँ–बाप भी नहीं पूछते हैं, परन्तु जब दूर के संबंध का भी कोई धनी हो गया तो सब बेटा का, दोस्त का, भाई का, बन्धु का, माता बहन का सम्बन्ध जोडते हैं। ये सब नाटक जोड देंगे क्योंकि स्वार्थ सिद्धि करने के लिये सब नाता जोडते हैं। उससे पूछता है कि भाई! भाई! तुम इतने कम दिन में धनी बन गये क्या कारण है? वह सब बता दिया ऐसी–ऐसी बात। ऐसी बात तो मैं भी जाऊँगा। उस पेड़ के नीचे बैठूँगा और मैं भी उन बातों को सूनूँगा और जो होगा मैं करुँगा, फिर मैं भी बडा धनी बन जाऊँगा। इसी प्रकार विचार करके रातों–रात वहीं चल दिया। कहाँ पर ? उस पेड़ के नीचे भूत का सरदार पूछता है कि तुम लोगों ने जो सब काम किये थे, वे ठीक है ना। बोले कि नहीं, क्या ठीक? वहाँ तो सब जल ही जल हो गया और वहाँ जो राजकुमारी थी उसकी दृष्टि शक्ति आ गयी। सब पानी फिर गया। ऐसी बात तो शायद जो हम उस दिन रात में बात–चीत कर रहे थे तब पेड़ के नीचे बैठकर के कोई सुन रहा था। उसने ही जाकर सब कांड किया है। देखो–देखो! नीचे कोई बैठा हुआ है या नहीं। देखो! जाओ

दौड़कर के। वे भूत आते हैं, देखते हैं कि एक आदमी बैठा हुआ है। अरे !, यही बदमाश है। पकड़ो इसको, उसको पकड़ा और कत्ल कर दिया, उसको मार दिया। ये हुआ एक उदाहरण। इससे क्या शिक्षा मिलती है ? जैसे नीतिकार ने कहा है–

अन्याय उपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ।।

जैसे बोलते हैं–चोरी का माल मोरी में **'अन्याय उपार्जितं वित्तं'** जो अन्याय से अत्याचार से, शोषण से, दूसरे का खून शोषण करके जो सेठ बनते हैं एक–एक दिन में, एक–एक रात में। भले कोई नहीं देखे, भले एक बार अरिहंत–सिद्ध भगवान् भी नहीं देखे परन्तु कर्म परमाणु नहीं छोड़ेंगे। कर्म किसी को नहीं छोड़ेंगे। **'अन्याय उपार्जितं वित्तं'** जो अन्याय से उपार्जन कर के धनी बनना चाहते, सुखी बनना चाहते हैं। 'अन्याय उपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति। 'ज्यादा से ज्यादा दस वर्ष। 'प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति। Interest 'सहित मूल धन Capital सब नाश हो जाएगा। क्योंकि जिस समय में आप दूसरों को शोषण करने के लिये विचार कर रहे हैं, उस समय पाप कर्म बन्ध होते हैं और जो पाप कर्म होते हैं वे आगे जा कर फल देते हैं। ये तो एक कारण हुआ ।दूसरा कारण मनोवैज्ञानिक कारण है। जिस समय में आप दूसरों को कष्ट देने के लिये सोचते हैं उस समय दूषित भव धारा चलती है (तरंग, धारा) निकलती है और दूषित भाव waves से प्रदूषण फैलता है और उस समय में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रोग हो जाते हैं। यहाँ तक कि जिस वस्तु को आप छूते हैं वे वस्तु भी दूषित हो जाती है। यहाँ तक कि जो भोजन भी आप करते हो वो दूषित हो जाता है। इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। एक बार गुरु नानक को निमंत्रण किया था बादशाह ने, भोजन करने के लिए परन्तु वहाँ पर वे नहीं गये भोजन के लिये। वे एक साधारण गरीब के यहाँ निमंत्रण स्वीकार कर लिये और भोजन कर लिये। बादशाह को पता चला कि ये फकीर हमारे घर पर निमंत्रण स्वीकार करके नहीं आया है। उनको बुलाये और बोले कि आप हमारे घर पर क्यों स्वीकार नहीं किया निमंत्रण? क्यों नहीं आये ? बोले कोई बात नहीं। मैं आपको Practical दिखा दूँगा, मैं क्यों नही आया? जवाब मैं Practical से देता हूँ। आपका माल–मसाला ले आओ। पूडी, कचौडी, हलवा सब ले आओ। बोले कि किसान तुम्हारी सूखी रोटी ले आओ। एक हाथ में उसका हलवा और एक हाथ मैं सूखी रोटी। सूखी रोटी को निचोड दिये तो क्या निकला? दूध और हलवा को निचोडे तो क्या निकला ? खून। तो आप मत सोचो कि हम केवल शुद्ध शाकाहारी है क्योंकि हम अण्डा नहीं खाते हैं, मांस नहीं खाते हैं । परन्तु यदि आप दूसरे का रक्त शोषण करके खाते हो तो आप रक्त और मांस खाते हैं। ये मनोवैज्ञानिक सिद्ध सिद्धांत है। अभी समय होने के कारण नहीं बोल पा रहा हूँ। इसका वर्णन मेरे द्वारा लिखित कर्म सिद्धांत एवं मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ में किया है। आगे मैं बताऊँगा कि कैसे? जो मनोवैज्ञानिक ने सिद्ध किया, मैंने कर्म सिद्धांत में सिद्ध किया है। हम जो विचार करते हैं, उसका वातावरण पर कैसा असर पडता

है और दूसरों के ऊपर कैसा असर पडता है ? मैं एक दिन मनोविज्ञान के ऊपर बोलूँगा उस समय मैं बताऊँगा। जीने की कला यही है। हमारे आचार्य जिसने एक शब्द में, एक Practical में एक ही गाथा में पूरी जीवन की कला बता दी है।

जं इच्छसि अप्पणतो जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स विय, एतियाणं जिण सासणं।।
तदिच्छसि आत्मनः यच्च नेच्छसि आत्मनः।
तदिच्छ परस्यापि च एतावत्कं जिनशासनम्।।

ये पूरा जिनशासन है। **"तदिच्छासि आत्मनः"** जो तुम स्वयं के लिये चाहते हो, जो व्यवहार जो कार्य–कलाप स्वयं के लिये चाहते हो, दूसरों के लिये वही व्यवहार करो। 'यच्च नेच्छसि आत्मनः' जो स्वयं के लिये दूसरों से नहीं चाहते हो वह व्यवहार तुम दूसरों के लिये मत करो।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रूत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

you cannot practice to others, you cannot behave to others which lahaviour is not good for you. you behave to others which behaviour is agreearleto you.

जो व्यवहार तुम्हारे लिये अच्छा नहीं लगता वो व्यवहार तुम दूसरो के लिये मत करो। जो व्यवहार तुम्हारे लिये अच्छा लगता, है वो ही व्यवहार दूसरों के लिये करो। वह ही धर्म है और धर्म कुछ नहीं। बोलते हैं ना–

प्रेम न बाडी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जे ही रूचै शीश देय ले जाय।।

प्रेम माने दया, करुणा, अहिंसा,। ये दया, करुणा, अहिंसा, धर्म बाग–बगीचा में नहीं, Market में नहीं, मन्दिर–मस्जिद में नहीं, धार्मिक ग्रन्थ में भी नहीं है। ये जो उपदेश दे रहा हूँ इस उपदेश में भी नहीं है। ये तो एक माध्यम है Medium है। इसको सुनकर के जो हम आचरण करेंगे, जीवन में वह ही धर्म है। आचरण में लाये वह ही धर्म, जो आचरण में नहीं लाये, वह ही अधर्म है। जो आचरण में लाये वह ही धर्म, जो आचरण में नहीं लाये वो सब फालतू। वो पालतू नहीं वो सब फालतू है। पालतू जो आप आचरण में ले आये वो ही पालतू है, आप लोगों के लिए योग्य है। आपका कोई शोषण करेगा तो आपको अच्छा लगेगा क्या ? तो फिर आप दूसरों का शोषण क्यों करते हो? आपको कोई गाली देता है तो आपको अच्छा लगता है क्या? तो फिर आप क्यों दूसरों को गाली देते हो ? आपके प्रति कोई खराब व्यवहार करेंगे तो आपको अच्छा लगेगा क्या? आप तो जीव हो, दूसरे जीव नहीं है क्या? आप में संवेदन शीलता है, दूसरे में संवेदनशीलता नहीं है क्या ? इसीलिये कहने का मतलब ये है, जो व्यवहार तुम्हारे लिए अच्छा है, वे ही व्यवहार दूसरों के लिए करो, यही जीवन जीने की कला है, यही धर्म है और कोई है तो वो केवल Theoretical धर्म है। Theoretical धर्म कुछ नहीं है किन्तु मन्दिर, मस्जिद, उपदेश, ग्रन्थ ये सब Theoretical धर्म है। धर्म आचरण में है। मेरा कहने का मतलब है जितना जीवन में आप सदाचार को अपनाते हो ये ही जीने की कला है और इससे ही सुख और शान्ति है और किसी से नहीं।

अध्याय 2
उत्तम मार्दव

धर्म–बन्धुओ ! रोहतक में केवल धर्म की दुकान नहीं आई है, खुल भी गई है और व्यापार चल भी रहा है। ये धार्मिक व्यापार है। इस व्यापार में आप अर्थ–व्यय करके कुछ भी खरीद नहीं सकते। परन्तु भावात्मक धन बहुत कुछ आप प्राप्त कर सकते हो। तो अभी चल रहा है चतुर्मास, मुनिसंघ का चतुर्मास, उसमें फिर दशलक्षण पर्व। पहले आप लोगों को जान लेना चाहिए कि धर्म के दशलक्षण क्या हैं? और पर्युषण पर्व क्या? क्योंकि मैं प्रायः प्रत्येक दिन बोलता हूँ कि जब तक हम उसका भावार्थ, मतार्थ, रहस्य नहीं जानते और तदनुकूल आचरण नहीं करते हैं तब वो धर्म, धर्म नहीं रहता है, अंध–परम्परा, रूढ़ि बन जाती है और जैन धर्म रूढ़िवादिता को स्वीकार नहीं करता। तो ये जो धर्म के दश्सलक्षण पर्व, पर्युषण पर्व क्या है ? इसके बारे में पहले संक्षिप्त वर्णन करूँगा। इसके बाद उत्तम मार्दव धर्म माने क्या है ? उसका स्वरूप क्या ? उसका फल क्या ? मैं बताऊँगा।

धर्म के दसलक्षण पर्व, पर्युषण पर्व है। वर्तमान् पर्युषण पर्व चल रहा है। आप लोग शब्द से पर्युषण पर्व बोलते होंगे। परन्तु पर्युषण शब्द का अर्थ भी प्रायः बहुत कम लोगों को मालूम होगा। उसका भावार्थ तो बहुत कम और उसके अनुसार चलने वाले करोड़ों में एक दो। कम से कम शब्दार्थ जानो और भावार्थ जानो। फिर भाव के अनुसार आचरण करो। क्योंकि 'शब्द ब्रह्म' और 'परम ब्रह्म'। शब्द ब्रह्म माने जिसके माध्यम से हम ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं, उसको शब्द ब्रह्म कहते हैं। जैसे मैं भाषण कर रहा हूँ और इसके माध्यम से जो जिस परम तत्त्व के बारे में जिस सत्य के बारे में बोल रहा हूँ वह हुआ 'परम ब्रह्म'। 'शब्द ब्रह्म' और 'परम ब्रह्म' में से शब्द ब्रह्म को पहले जानना चाहिए। परम ब्रह्म चाहिये तो पूर्ण रूप से उसकी उपासना करो। तब जाकर तुम्हें उस महान् शक्ति की उपलब्धि होगी। 'पर्युषण' का अर्थ है–'परिसमन्तात उपशनम्' । पर्युषण शब्द का अर्थ है समग्रता से उपासना। दस धर्म के लक्षण, धर्म के दस लक्षण। वस्तुतः जैसे आकाश सर्वव्यापी अखंड Individual substance है, वस्तु है, द्रव्य है, उसी प्रकार धर्म भी सार्वभौम, बाधारहित सत्य है। जैसे किसी भी माध्यम से हम आकाश को खंडित नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार हम धर्म को किसी भी अस्त्र से किसी भी दृष्टि से खण्डित नहीं कर सकते हैं क्योंकि आकाश जैसे एक सर्वव्यापी, अमूर्तिक, अखंड द्रव्य होने से उसको खण्डन नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार धर्म सर्वव्यापी, अमूर्तिक, सार्वभौम परम सत्य है। फिर ये दस लक्षण कहाँ से आ गये ? जैसा कि कल आचार्य जी ने बताया था, तो फिर ये दस लक्षण कहां से आ गये ? भेद कहां पड़ गये? उसको भी जानना अनिवार्य है और धर्म माने क्या ? वस्तुतः धर्म शब्द का रहस्य या उसका आचरण जितना गहन, गूढ, रहस्यपूर्ण है उतना गहन, रहस्यपूर्ण और सूक्ष्म विषय इस विश्व में, तीन काल में और कुछ है ही नहीं। 'क्योंकि धर्म में ही सब कुछ निहित है। जैसे मैं बोलता हूँ– Where logic is last, then

philosphy is starts, where philosphy islast then religion is starts. जहाँ तर्क समाप्त हो जाता है, वहाँ दर्शन शास्त्र शुरु हो जाता है, दर्शन के अन्त में, विज्ञान का प्रारम्भ हो जाता है। जहाँ विज्ञान समाप्त हो जाता है, उसके बाद धर्म–शास्त्र का प्रादुर्भाव हो जाता है। तो धर्म माने क्या? जैसे कि हमारे आचार्य ने कहा है, 'जैन रामायण', 'पद्म पुराण' में आचार्य 'रविषेण' ने–

धर्म शब्दमात्रेण प्रायेण प्राणिन अधमः।
अधर्ममेव सेवन्ते विचारजड़चेतसा।।

मैंने आप लोगों को एक दिन बताया था कि इतिहास में ऐसे बडे–बडे क्रांतिकारी महापुरुष हुए हैं जो कि धर्म के नाम पर चिढते हैं जैसे "लेनिन, कार्लमार्क्स" आदि। जो चिढते थे उसमें बहु अंश सत्य है और मैं उसको स्वीकार भी करता हूँ और चिढना भी चाहिए। जैसे स्वयं "लेनिन बोलते थे।

At first you destroy religion. Religion is a weapon by which we destroy human -society. 'लेनिन', बोलते थे कि पहले धर्म का हनन करो धर्म को जलाओ, धर्म की शव–यात्रा निकालो क्योंकि धर्मरूपी अस्त्र से मानव ने मानव समाज का हनन किया है। लेनिन ने अभी–अभी कुछ दशक पहले बताया था परन्तु रविषेण आचार्य ने हमारे यहाँ 1100–1200 वर्ष पहले ही बताया था। वो तो बोलते हैं कि–

धर्मशब्दमात्रेण प्रायेण प्राणिन अधमः।
अधर्ममेव सेवन्ते विचारजड़चेतसा।।

धर्म शब्द के कारण, धर्म के आड़ में जितना अभी तक अन्याय, शोषण, अत्याचार, मिथ्या–परम्परा का चलन हुआ, उतना अन्य कारणों से नहीं हुआ। इसलिए धर्म शब्द बहुत भयंकर है, खतरनाक है। इसलिए विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग धर्म से चिढते हैं और चिढना भी चाहिए परन्तु जिस धर्म से चिढते हैं, उससे चिढ़ना चाहिये। वस्तुतः धर्म से तो कोई चिढ़ ही नहीं सकता, बिना श्वास कोई जिंदा नहीं रह सकता। कुछ दिन नहीं खाने पर जिंदा रह सकते हो, महीनों भर, एक वर्ष तक। कुछ महीनों भोजन मिलने पर जिंदा रह सकते हो। परन्तु श्वास नहीं तो जिन्दा नहीं रह सकते हैं। इसी प्रकार धर्म–श्वाँस बराबर है तो धर्म माने क्या ?

जैसे ईसाई धर्म में पोप आदि बोलते थे कि यदि तुम को ईश्वरीय राज्य चाहिए, तो तुम मुझे 10–20 हजार रु0 दे दो। मैं तुमको धर्म के लिए, स्वर्ग के लिए, ईश्वरीय राज्य के लिए Certificate (प्रमाण–पत्र) दे दूंगा। जिस Certificate के कारण तुम को स्वर्ग मिल जायेगा। भले ही तुम अन्याय करो, अत्याचार करो, पाप करो। अथवा हिन्दु धर्म में कुछ वर्ष पहले जब महावीर, विवेकानंद आदि महापुरुष का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, राजाराम मोहनराय का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, उससे पहले हिंदू में काशी–करवट था। काशी–करवट में क्या होता था ? कोई भी पापी से पापी भी वहाँ जाकर धर्मात्मा बन जाता था। पंडित लोग, पुरोहित लोग बोलते थे कि तुम एक लाख, दो लाख, दस–बीस हजार दे दो और इस काशी में जो ये तलवार है, सरोते हैं उसके

बीच में सिर रख लो और तुम्हारी बलि चढ़ाते हैं और तुमको मोक्ष मिल जायेगा। स्वर्ग मिल जायेगा। ये सब धर्म के नाम बलि चढ़ाना धर्म के नाम पर सती प्रथा होना, ये सब ढोंग है अथवा धर्म का भेष लेकर दूसरों का शोषण करना। जैसे शंकराचार्य ने कहा–

कुरुते गंगा सागरस्नानं, व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञान विहिने सर्व कर्मेण मोक्ष न याति जन्म शतेन।।

गंगा–जमुना में स्नान करने पर कभी भी कोई स्वर्ग नहीं चला जाता। जैसे गंगा–जमुना में जो जन्म लेते हैं, ऐसे मगरमच्छ, मेंढ़क, मछली, कछुआ वहीं जन्म लेते हैं, जीवनयापन करते हैं और वहीं मर जाते हैं तो क्या उन सब को मोक्ष मिल जायेगा? स्वर्ग मिल जायेगा क्या? इसी प्रकार उसने और भी कहा–

जटिलो मुण्डी लुंचित केशः, कषायम्बर बहुकृत वेशः।।
पश्यनपि न पश्यति मूढ़ः, उदर निमित्तं बहुकृत वेशः।।

'मुण्डी–मुण्ड' पहले जैन धर्म पर कटाक्ष किया कि केवल केशलोंच करने से ही कोई साधु नहीं बनता है। अथवा 'मुण्डित–मुण्ड लुंचित केश' कोई मुण्डन बना लिया तो कोई साधु नहीं बन जाता है। मुण्ड–मुण्डैया तीन गुण मिट गई सिर की खाज; खाने को लड्डू मिले, लोग कहे महाराज! ये केश लोंच क्यों करते हैं, साधु लोग? मालूम है क्या? कहा तीन गुण के लिए, मिट गयी सिर की खाज। बाल बढ़ने से जूं पड़ जाती है और खुजली हो जाती है इसे नष्ट करने के लिए। मुण्ड़ मुण्डैया तीन गुण मिट गये सिर की खाज, खाने को लड्डू मिलें। अरे! महाराज आए हैं। माल खिलाओ, गुलाब जामुन, रसगुल्ला खिलाओ। जो आप लोग नहीं खाते हो वो खिलाते हो। क्यों ? साधु ने केश लोंच किया और लोग कहें कि महारज ने केश लोंच किया है। ये कोई धर्म नहीं है। जैसे सांप ने केंचुली छोड़ दिया तो क्या सर्प ने विष छोड़ दिया? इसी प्रकार बाह्य छोड़ने से और केशलोंच करने से, पिच्छी कमण्ल लेने से क्या कोई महाराज बन जाता है? यदि ऐसा होता तो बहुत बड़े धर्मात्मा हो जाते। नारकी सबसे बड़ा धर्मात्मा बन जाता और पशु–पक्षी तो बहुत बड़े धर्मात्मा होंगे। नहीं, ये केवल साधन है। जैसे विद्यालय में विद्या नहीं होती है, विद्यालय जाकर अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार मन्दिर, कॉलेज, स्कूल में उपदेश में, धर्म में नहीं हैं। केश–लोंच में धर्म नहीं हैं, परन्तु ये माध्यम है। इसमें अटकना नहीं चाहिए परन्तु इसको छोडना भी नहीं चाहिए क्योंकि बिना मार्ग से आप लक्ष्य स्थल पर नहीं पहुँच सकते हो। तो फिर धर्म क्या है? मैंने तो सब खण्डन कर दिया हैं कर्नाटक में एक कवि हुआ है जिसका नाम सर्वज्ञ था। बोलता है कि जैन लोग मंदिर में जाकर चंदन लगाते हैं और धर्मात्मा बन जाते हैं। यदि चंदन लगाने से ही कोई धर्मात्मा बन जाता है तो जिस पत्थर पर चंदन घिसते हैं तो वह पत्थर बहुत बड़ा धर्मात्मा बन जाएगा। उसको पहले स्वर्ग, मोक्ष मिल जाएगा। इसलिए, चंदन लगाने से ही कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता है। इसका मतलब है कि चंदन लगाना नहीं छोड़ना चाहिए इसमें वैज्ञानिक कारण है। तो फिर धर्म क्या है ?

जो विभिन्न परिभाषाएँ हैं, उसमें बहुत कुछ कमियाँ हैं, गल्तियाँ भी है और कुछ विपरीत भी है। वर्तमान युग कुछ दृष्टि से बहुत खराब है और कुछ दृष्टि से बहुत अच्छा भी है। मैं मानता हूँ कि कुछ शतक पहले जो रुढ़िवादी परम्परा आदि थी वह अभी नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि ये एक प्रकार का Golden Age है। वर्तमान में धर्म को यदि हम तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि से वर्तमान के नवयुवक और नवयुवतियों को समझा देते हैं, तब ये जितने अच्छे धर्मात्मा होते हैं इतने कुछ दशक के पहले बूढा–बूढ़ी जो थे वो भी इतने धर्मात्मा नहीं हो सकते। इसलिए हमें पहले धर्म की परिभाषा भी जान लेना चाहिए। धर्म क्या है ? आचार्य कुन्दकुन्द देव धर्म की परिभाषा करते हुए कहते हैं तथा इसी प्रकार स्वामी कार्तिकेय धर्म की परिभाषा करते हुए बताते हैं–

वत्थु सहावो धम्मो, खमादि दसविह धम्मो।
रयणत्तयं य धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।।

इस गाथा में धर्म की सम्पूर्ण परिभाषा है। धर्म 'वत्थु सहावो धम्मो' The charactersties of the substance is called religion. इसमें सम्पूर्ण परिभाषा आ जाती है। जो वैज्ञानिक सिद्ध सिद्धांत है। वस्तुतः जो गुण, धर्म स्वभाव है, वही धर्म है। जैसे अग्नि का गुण व धर्म क्या है? उष्णता और प्रकाशकत्व गुण। इसलिए मैं बोलता हूँ और मेरी अनेक किताबों में मैंने लिखा भी है धर्म की परिभाषा The way of religion is the way of peace and happiness. धर्म का मार्ग सुख–शान्ति का मार्ग है। यदि एक धर्म है और उस धर्म में चलते हुए आपको अत्यधिक कष्ट होता है तो वह धर्म नहीं है। तो आप बोलेंगे कि महाराज ! उपवास करने में, केशलोंच करने में 'हाँ' जो दुःख होता है, कष्ट होता है तो इसका त्याग करना चाहिए। नहीं–नहीं। इस समय में वैसे ही सात्विक सुख और शान्ति मिलती है जैसे जिस समय में किसान कृषि करता है, उस समय मे उसे बहुत परिश्रम करना पडता है और इस परिश्रम के फलस्वरूप उसको फल मिलता है। जिसके कारण वो सुखमय जीवनयापन करता है। यदि कुछ तात्कालिक कष्ट से भयभीत होकर, यदि किसान कृषि नहीं करता है तो सुख–शान्ति नहीं मिल सकती है। इसी प्रकार हम जो कर रहे हैं वो कुछ अपेक्षा आपकी दृष्टि से दुःख मालूम होगा परन्तु दुःख नहीं है। उससे सुख और शान्ति मिलती है। जैसे रोगी कड़वी औषधि लेता है, कडवी औषधि लेने पर तात्कालिक कष्ट होता है और उल्टी होती है परन्तु उससे रोग दूर होता है और अधिक सुख मिलता है। जैसे एक फोड़ा हो जाता है और उसका Operation किया जाता है। तो उससे क्या होता है ? आगे जाकर सुख मिलता है। ये जो दस–लक्षण धर्म है ना, इससे सुख और शान्ति मिलती है। क्षमा आदि से सुख मिलता है। अहंकार से सुख मिलता है क्या? नहीं और मार्दव से सुख मिलता है। इसलिए ये जो धर्म कहा गया है इससे सुख और शान्ति मिलती है। तो इसके दस भेद क्यों किये गये ? दस भेद वस्तुतः नहीं हैं। जैसे अग्नि में उष्णत्त्व गुण है, प्रकाशकत्त्व गुण है, दाहकत्व गुण है तो। अग्नि का जो दाहकत्व गुण है Rohtak में है, प्रकाश का गुण Delhi में है और जलाने का

गुण Bombay में हैं। ऐसा है क्या? सब गुण एक ही साथ रहेंगे परन्तु इसका वर्णन अलग–अलग करते हैं, उपयोग अलग–अलग करते हैं, इसी प्रकार उत्तम क्षमा–मार्दव आदि हैं। अलग–अलग नहीं हैं। पहले उत्तम–क्षमा, मार्दव आता है और Last में ब्रह्मचर्य आता है। ऐसे भी गलत मत करना। ये सब धर्म एक ही साथ प्रकट होते हैं जब भी प्रकट होंगे। जैसे एक उदाहरण देता हूँ। जब सूर्य उदय होता है तो एक साथ उष्ण तथा प्रकाश उत्पन्न होगा और जिस समय अग्नि जलेगी उस समय सब गुण एक साथ प्रकट होंगे और जिस समय अंकुर फूटेगा, उस समय ऊपर का अंकुर और नीचे की जडें एक साथ फूटेंगी। इस प्रकार उत्तम–क्षमा भी धर्म है। ये दस धर्म हैं। अन्य गुण हैं या विभिन्न प्रणालियाँ हैं। जो कल उत्तम–क्षमा के बारे में उपदेश हुआ 'हाँ' आप लोगों ने उत्तम–धर्म सुन लिए होंगे। आगे पाठ, पीछे सपाट,'हाँ' ऐसा क्या? आज उत्तम मार्दव धर्म है क्या ? दिन कभी धर्म नहीं होता है क्योंकि दिन सूर्य की गतिविधि से होता है। इस दिन में हमें धर्म के बारे में Training लेना है। शिक्षा प्राप्त करना है। इस दिन में धर्म नहीं होता है। मान लो आज कोई पाप करता है, क्रोध करता है, अहंकार करता है तो क्या उसके लिए उत्तम–मार्दव धर्म आज है क्या ? नहीं। जैसे विद्यालय जाकर के विद्या ग्रहण करना चाहिए और वहाँ जाकर के उदण्डता सीखते हैं, भ्रष्टाचार सीखते हैं। तो विद्यालय उनके लिए विद्या प्राप्ति के कारण बना क्या ? तो इसी प्रकार आज मार्दव धर्म नहीं है, आज उत्तम–मार्दव धर्म के बारे में प्रशिक्षण लेना है और जीवन में उत्तम–मार्दव धर्म का पालन करना है। यहाँ तक मैंने सामान्य विधि से वर्णन किया। उसके बाद में बताऊँगा उत्तम–मार्दव धर्म। कल आचार्य जी ने उत्तम के बारे में बताया था। उत्तम क्यों रखा गया ? उत्तम इसलिए रखा गया कि निरपेक्ष भाव से आध्यात्मिक उन्नति के लिए, आत्म शुद्धि के लिए जो किया जाता है उसे उत्तम कहते हैं। यदि निरपेक्ष भाव से आध्यात्मिक उन्नति के लिए, आत्म शुद्धि के लिए जो किया जाता है उसे उत्तम कहते हैं। यदि निरपेक्ष भाव से आध्यात्मिक उन्नति के लिए आत्म–शुद्धि के लिए यदि पालन नहीं करते हो तो ये उत्तम धर्म नहीं है और यदि सम्यक् दर्शन सहित, सम्यक् ज्ञान सहित यदि आप पालन नहीं करते हो, मूढ दृष्टि से, अविधि से, निहित स्वार्थ से करते हो, ये भी उत्तम धर्म नहीं है। इसलिए उत्तम शब्द दिया गया है। इसके बाद मार्दव, मार्दव माने क्या ? "मृदु भावः मार्दव" जो मृदुता है, नम्रता विनय है उसे मार्दव कहते हैं। ये जो मार्दव हैं– विभिन्न प्रकार का होता है। मैं पहले संक्षिप्त वर्णन करने से पहले एक उदाहरण दूंगा। आप लोगों को पहले जैन धर्म के बारे में जानना ही पडेगा और अगर नहीं बतायेंगे तो आपको क्या पता चलेगा कि जैन धर्म इतना वैज्ञानिक और रहस्यमय धर्म है। ये जो आप लोग सोचते हैं कि जैन धर्म एक रुढि है तो वजन नहीं रहेगा। वजन नहीं रहने पर आप स्वीकार नही करेंगे। इसलिये कभी–कभी आप लोग ये विषय समझ नहीं पाते हो तो भी मैं बोलता हूँ क्योंकि जो रत्न खरीद नहीं पाता है तो भी रत्न का मूल्य कम नहीं होता है। भले ही आप खरीद नहीं पाते हैं तो इसका मतलब हम, हमारे

वैज्ञानिक और इतना जो विश्वज्ञापक धर्म है, इसको क्या हम छोड देगे ? नहीं, देखो हम लोग नंगे रहते हैं तो कुछ लोग हंसते हैं तो क्या हम लोग नंगा रहना छोड देंगे? नहीं। तो पहले मैं बताऊँगा, ये अहंकार के कारण क्या क्षति होती है ? पहले मैं बौद्ध धर्म की एक कथा बताता हूँ, जो जातक कथा से है–

महाप्रताप नामक एक राजा था। उसके घर में बोधिसत्त्व ने जन्म लिया। बोधिसत्त्व जैसे हमारे महावीर भगवान् पहले अन्य भव में जन्म ग्रहण किए थे, इसी प्रकार बुधत्त्व के पहले बोधिसत्त्व कहते हैं। उनका नाम रखा गया धर्मपाल। बहुत सुन्दर सुकुमार सात महीने का लड़का था और उसकी माता उसके लालन–पालन में ही समय व्यतीत करती थी। सात महीने का लड़का था और एक दिन राजा अन्तःपुर में जाता है और उस समय में रानी क्या कर रही थी ? धर्मपाल को लेकर खेल रही थी। तो उस समय में राजा ने प्रवेश किया। परन्तु रानी पुत्र–प्रेम के कारण और खेलने में इतनी व्यस्त थी कि उठ करके राजा का सम्मान नहीं कर पाई।

राजा दूर से देखता है कि अरे! रानी ने मेरे आने के बाद भी उठ करके मेरा सम्मान नहीं किया। जो अहम भावरूपी सर्प ने उसको डस लिया। फूंकार किया। वापिस हो जाता है। राजदरबार में बैठकर के राजकर्मचारी को Order देता है, जाओ, उस धर्मपाल को लेकर आओ। क्यों ? यदि ये धर्मपाल रहेगा तो पुत्र–प्रेम के कारण रानी मेरा अपमान करेगी। इसलिए 'ना रहे बाँस, ना बजे बांसुरी'। इसको ही खत्म कर देता हूँ। अहंकार के कारण क्या हो रहा है ? राजकर्मचारी जाता है और बोलता है कि धर्मपाल को दो। रानी को मालूम हो गया कि राजा क्रोधित होकर गया है और जरूर अनर्थ करेगा। इसलिए रानी ने धर्मपाल को पकड़ लिया और नहीं दिया। लेकिन जो राजकर्मचारी था बहुत शक्तिशाली था। उसको लात–घूंसा मारकर के धर्मपाल को ले गया। देखो, अहंकार की पुष्टि के लिए राजा क्या–क्या करता हैं ? जो रानी अर्द्धांगिनी थी, आज उसी का अपमान किया। अभी और क्या करेगा ? रानी पीछे–पीछे दौड़ के राजसभा में आ गई। राजा बोलता है कि एक लकड़ी का पट्टा लाओ, पट्टा लाया गया। यहाँ बिछाओ, बिछा दिया गया। ये धर्मपाल को यहाँ सुलाओ, सुला दिया गया। देखो, ये जो धर्मपाल सुकुमार था ना, ये पहले तो पलंग पर सोता था, बदले में उसे एक पट्टा मिला। इतना ही नहीं, इतने में राजा को संतोष नहीं हुआ। चाण्डाल को आदेश दिया कि उसके दोनों हाथ काटो और सुकुमार के दोनों हाथ काटने लगे। माँ बोलती है कि इसका तो कोई दोष नहीं, दोष तो मेरा है। मेरा हाथ काटो। राजा तो अहंकारी था। अहंकार से व्यक्ति अन्धे हो जाते हैं। तो वो अन्धा था। लडके का कुछ दोष नहीं है। परन्तु जो जिस प्रकार का अनुमान लगाता है उसे जिस प्रकार का दिखाई देता है रानी जब आगे आई तो उसे धक्का देकर गिरा दिया और चाण्डल ने राजा के सामने ही जाकर के उस सुकुमार शिशु के दोनों हाथ काट दिए। रक्त की नदी बहने लगी। फिर राजा बोलता है कि इसके दोनों पैर काट दो। फिर दोनों पैर काट दिये गये। रानी बोलती है कि माँ का तो अधिकार पुत्र पर। भले ही पुत्र अंधा

हो, लंगडा हो, विकलांग हो। तो इसका पालन पोषण करने के लिए मुझे मेरा पुत्र दे दो। राजा बोलता है कि नहीं–नहीं तुम्हें ये बच्चा नहीं मिलेगा। इसके कारण तुमने मेरा अपमान किया। अपमान करने की कोई भावना नहीं थी परन्तु जो अहंकारी होता है वो बिना कारण ही स्वयं पर आरोपित कर लेता है। फिर राजा Order देता है कि इसका सिर काट दो, सिर काट दिया गया। जो राजा का अहंकार रूपी राक्षस था जिससे सारी राजसभा में उस का कोई प्रतिवाद नहीं कर पाया। रानी बोलती है कि उठकर के पहले मेरा सिर काट दो। राजा ने सुना नहीं और बच्चे का सिर काट दिया गया। फिर वो चाण्डाल पूछता है कि अब क्या करना चाहिए ? राजा बोलता है कि इसको की तलवार माला बनाओ। तो चाण्डाल ने बच्चे को ऊपर फेंक दिया और तलवार नीचे रख दिया और बच्चा उसके ऊपर आकर के गिर गया। तो भी राजा को संतोष नही हुआ और बोलता है कि इसकी बोटी–बोटी कर दो। उस बच्चे को बोटी–बोटी कर दिया गया और रानी का दुःख के कारण Heart-Attack हो गया। रानी मर गई, मरने के पहले रानी बोलती है कि इस दुनिया में धर्म नहीं है, कोई धर्मात्मा नहीं है क्योंकि किसी ने भी प्रतिवाद नहीं किया। धर्म सुन्न हो गया है। उस समय धरती एक दम फट गयी और राजा उसमें समा गया और मरकर नरक में गया। देखो, राजा ने स्वयं अपने लडके की हत्या क्यों करवाई ? इस अहंकार के कारण उसने केवल हत्या ही नहीं करवाई वरन् रानी भी मर गई। और स्वयं राजा भी मर गया तथा मरकर के नरक में गया। ये अहंकार के कारण हुआ। इसलिए अहंकार से दुःख होता है, कर्मबन्ध होता है, इसलिए अहंकार नहीं करना चाहिए। परन्तु इसका मतलब आप ये मत सोचना कि हम स्वाभिमान से रहित हो जायें। अनेक प्रकार के विनय हैं, जैसे–काम विनय, अर्थ–विनय, लौकिक–विनय और भय विनय। 'काम–विनय' कामासक्त व्यक्ति जहाँ पर काम की पूर्ति होती है वहाँ जाकर के विनय करता है। जैसे कामी व्यक्ति, जार स्त्री, वेश्याओं की विनय करता है। ये क्या विनय है ? ये विनय नहीं है। 'विनय' जहाँ पर आप को धन मिलता हो, रुपया मिलता हो, वहाँ जाकर के उसका विनय करते हो। जैसे कुत्ते को एक रोटी दे दो तो आपका दास बन जाएगा, पूंछ हिला करके आपके पीछे ही भागता रहेगा। ये कोई विनय है ? ये दीनता है। दीनता और विनय में बहुत अन्तर है। परन्तु दीनहीन होने के लिए नहीं बोल रहा हूँ। हमारे यहाँ पर कहा गया है–

विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं।
विणएणाराहिज्जदि आइरिओ सव्वसंघो य।।

'अर्थात् विनय मोक्ष के लिए द्वार है और जो अविनयी पुरुष होता है उसका ज्ञान संयम और चारित्र सब नष्ट हो जाते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि आप सब का विनय करो, दीनहीन हो जाओ, ये नहीं है विनय। जैसे मैं एक कथा बताता हूँ–

एक ब्राह्मण के तीन लड़कियाँ थीं। उन लड़कियों की शादी के समय वो ब्राह्मणी बोलती है कि जब तुम्हारी अपने पति के साथ पहली भेंट होगी तब एक काम

करना। जब तुम्हारे पति सामने आयेंगे तब एक जोर से लात मारना। तीनों लड़कियों की शादी हो गई।

पहली लड़की का पति आया तब उस लड़की ने माता की आज्ञा अनुसार जोर से लात मारी। जब लात मारी तो पहला पति बोलता है कि अरे मेरी धर्मपत्नी! हाय मेरा सिर कितना कठोर है, व्रज के जैसे। तुम्हारा पैर तो मृदुल है, तुमको तो बहुत कष्ट हो रहा होगा। वो क्या करता है कि चन्दन घिसता है, कपूर मिलाता है और उसके पैर पर लेप लगाता है और उसकी सेवा करता है। फिर दूसरी लड़की का पति आया। पति के आने के बाद उसने भी पूजा की लात से। पूजा करने के बाद वो पति बोलता है कि अरे उडण्ड लड़की! मेरे माँ–बाप ने मेरा पालन–पोषण किया। उन्होंने तब भी नहीं मारा और तूने लात मारी। सावधान! इसके आगे कभी ऐसा करोगी तो देख लूंगा। डाँट लगाई। तीसरा पति तीसरी लड़की के पास आया। जब उसने लात मारी। जैसे महात्मा गाँधी बोलते थे कि एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल आगे कर दो। परन्तु सुभाष चन्द्र बोस बोलते थे कि बिना कारण कोई तुम्हें एक थप्पड़ लगाता है तो कम से कम दो थप्पड़ मारो। वो तो दो थप्पड़ बोले थे। मैं बोलता हूँ तुम अहिंसावादी बनो। बिना कारण किसी को कष्ट मत दो परन्तु आपको धर्म के मार्ग पर चलते हुए, आपके उठते हुए कदम को यदि टांग को, पकड करके कोई पीछे खींचता है तो यदि कोई तुम्हें एक थप्पड़ लगाता है तो एक के आगे जीरो लगाकर कम से कम 10 थप्पड़ लगाओ। ज्यादा भी लगा दो तो कोई पाप नहीं। क्यों ? मैं बताता हूँ, रामचन्द्र ने केवल एक सीता के लिये करोड़ों औरतों को विधवा नहीं बनाया, बल्कि सत्य के लिये, शील धर्म और मर्यादा के लिए। मैं मानता हूँ रामचन्द्र ने सीता को वनवास भेजा यह अन्याय किया। मृग के पीछे दौड़े अन्याय किया। परन्तु लंका का ध्वंस किया तब अन्याय नहीं किया। करोडों व्यक्तियों का हनन किया यह अन्याय नहीं। यह धर्म की मर्यादा है, अनुशासन है। नहीं तो अन्याय की शक्ति सिर उठाती जाऐगी। तो जब वो तीसरी लडकी लात मारती है एक लात, उसने मारी। बस, एक लात के बदले में पति का थप्पड–थप्पड–थप्पड–थप्पड चालू हो गया। उसके पास वहाँ जो कुछ था लाठी, ईंट, पत्थर मिला, उसे लेकर उसको मारा, धम्म–धम्म–धम्म। जैसे कीचक वध हुआ था। पति बोलता है कि बदमाश लडकी कहाँ की? 'हाँ' मेरे माँ–बाप ने मेरा पालन–पोषण किया। उन्होंने आज तक बिना कारण मुझे एक भी थप्पड नहीं मारा और तुम बिना दोष के ही मुझे ये लात मारती हो। Get out from my home. यहाँ से अर्ध रात्रि में ही मेरे घर से निकल, नहीं तो तेरी गति नहीं। Second में ही निकल जा यहाँ से। जैसे महात्मा गाँधी बोलते थे Quit India उसी प्रकार उसने बोला Quit from My home. घर से बाहर निकाल दिया। वो रातभर बाहर रही। फिर उसके बाद तीनों लडकियाँ अपनी माँ के पास जाती हैं। पहले बडी लडकी जाती है। माँ बोलती है अच्छा, तुमने पूजा की ना। हाँ, मैंने लात से खूब पूजा की। अच्छा तुम्हारा पति क्या बोला ? जब मैने लात से अपने पति की पूजा की तब मेरे पति ने चन्दन

घिसकर के, कपूर मिलाकर के और मेरे पैर पर लगाकर के मेरी खूब सेवा की। अच्छा, कोई परवाह नहीं, तेरा पति तुझे लोहे के जैसा, गधे के जैसा मिल गया है। तुम्हारा पति तुम्हारे पैरों को जीवन भर धोता रहेगा। परन्तु तुम्हारा पति लोहे के जैसा है अर्थात् गधे के जैसा है ? कोई बात नहीं। दूसरी लडकी आई। तुम्हारे पति कैसे हैं? ऐसे–ऐसे, हाँ तुम्हारे पति उसके पति से बेहतर है। Good, better परन्तु एक बात ध्यान रखना, बिना कारण कभी भी कुछ नहीं बोलना। सावधानी से चलना। तुम्हारा पति चाँदी के जैसा है। हाँ, उससे अच्छा है। तीसरी लडकी आई। तुम्हारा पति कैसा है? मेरे पति ने तो भगा दिया। देखो, मेरी कैसी हालत बना दी है? क्या हुआ ? उसने पूरी घटना सुनाई कि ऐसे–ऐसे हुआ। तुम्हारा पति Golden सोने के जैसा है। The best सबसे अच्छा पति मिला है। तुम्हारा जीवन सुखमय और आदर सहित है। ये परीक्षा थी। तुम लोग ये धर्म में सूक्ष्म–भेद–रेखा को पहचान नहीं पाते हो। जहाँ स्वाभिमान होना चाहिए, वहाँ तो आप लोग अहंकारी और दीनहीन बन जाते हो और जहाँ गर्व नहीं करना चाहिए, वहाँ आप लोग गर्व करते हो। समय कम है, और मुझे बोलना बहुत है। मैं सब कुछ पढता हुँ। आप लोगों को तो मालूम होगा कि लाला लाजपतराय कौन थे ? मालूम है क्या? जैन थे। उन्होंने जैन धर्म क्यों त्याग किया ? कोई बोल सकता है ? उसका रहस्य मालूम है क्या ? वो एक महान् क्रान्तिकारी नेता होते हुए भी, अन्तर्राष्ट्रीय नेता होते हुए भी उन्होंने जैन धर्म का त्याग क्यों कर दिया ? आपको मालूम है, कभी इतिहास पढ़ा है क्या ? क्यों हमारे धर्म का पतन हो रहा है? उसका कारण क्या है? क्या अहिंसा है, क्या दान है, उदारता है? कभी विचार किया? नहीं। हमारा भारत पराधीन क्यों हुआ? सहायता के कारण ? अहिंसा के कारण ? उदारता के कारण ? क्षमा के कारण ? नहीं, क्यों ऐसा हुआ ? उस समय जब हमारे धर्म से प्रायः क्षत्रिय लोग हटते गये। जैसा विनोबा भावे बोलते थे, सर्वश्रेष्ठ विश्व में धर्म है तो जैन–धर्म किन्तु अभी इसके अनुयायी सबसे निकृष्ट हैं क्योंकि यहाँ वे व्यापारी वर्ग जैसे दुकान में जाकर के व्यापार करते हैं और तुला–यन्त्र में तोलते हैं। इसी प्रकार ये लोग धर्म को भी रुपया के माध्यम से तोलने लगे। इसलिए जैन धर्म का आज पतन हो गया। आप लोग क्या सोचते हो ? कायरता और अहिंसा क्या एक है? फिजूल–खर्ची और उदारता क्या एक है? स्वच्छन्दता और स्वाधीनता क्या एक है ? ये जो सूक्ष्म भेद रेखा है, इसको पकडना करोडों में एक दो व्यक्तियों के हाथ में है? लाला लाजपतराय ने जैन–धर्म का क्यों त्याग किया ? उन्होंने अध्ययन किया। जैन–धर्म स्वावलम्बी वीरों का धर्म है और आत्म–गौरव का धर्म है। धर्म के लिए मर–मिटने का धर्म है। क्षमा का धर्म है। अहिंसा का धर्म हैं परन्तु आज इस धर्म के नाम पर लोग कायर होते जा रहे हैं, आत्म–गौरव खोते जा रहे हैं। इसलिये इस धर्म से देश का उद्धार नहीं हो सकता और मैं इसमें 99% सत्य पाता हूँ केवल 1% सत्य नहीं है क्योंकि हमारा धर्म कायर का धर्म नहीं है, ना ही भोन्दू का धर्म है, ना जडवादी का धर्म है। तो हमारे यहाँ पर कहा गया है कि इस सूक्ष्म भेद रेखा को पहचानो। हमारे यहाँ पर आचार्य ने कहा है–

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।
स उच्चैश्चेतसां मानः परःस्वपरघातकः।।

तीन प्रकार के मान हैं। (1) अहंकार, (दुरभिमान) (2) स्वाभिमान (आत्म–गौरव) और (3) निरभिमान। जैसे अशुभ उपयोग, शुभोपयोग और शुद्ध उपयोग। ये तो आप लोगों को समझ में नहीं आएगा। तीन योग हैं। इसी प्रकार का मान है। 'अहंकार' त्यजनीय है और महापाप है। जिसके रहते हुए नैतिक आचार आ ही नहीं सकता और धर्मात्मा तो हो ही नहीं सकता। हमारे यहाँ पर कहा गया है "अष्टमद से रहित होने पर जीव धर्मात्मा बनता है" इसलिए मद तो होना ही नहीं चाहिए। एक दो रुपये के कारण ही मद चढ जाता है। जैसे बोलते हैं –

कनक–कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वे पाए बौराये नर, वे खाए बौराय।।

रुपया का मद कनक–का मद। कनक माने विष और कनक माने सोना व रुपया। इन दोनों में अन्तर है, विष (धतूरा) खाने से नशा चढता है और रुपया मिलने से तो और भी नशा चढता है। जिससे आप लोग मस्त हो जाते हो और आपको कुछ दिखाई नहीं देता है और जो अभी–अभी नए नए सेठ साहुकार होते हैं, वे अधिक अहंकारी होते हैं। वे नए Note को जो टैरिकाट का Shirt लाता है उसमें जो Pocket होता है उसमें ऊपर रखेंगे। और लोगों को दिखाते जाएंगे। जो दांत में चाँदी लगाते हैं वो बार–बार दांत फाडेंगे बन्दर के जैसे। जो Ring – अंगूठी पहनते हैं वो बार–बार उसी अंगुली को दिखायेंगे और जो घडी पहनते हैं, वो उसी हाथ को हिला करके बात करेंगे। ये भी अंहकार है, पतन का कारण है। आप तो ये सब करते हो परन्तु ये सब पतन का कारण है। अभिमान है, ये नहीं होना चाहिए। बोलते हैं–

Little mind is proud of own position

सम्पूर्ण कुंभः न करोति शब्दम्, अर्द्धघटः शब्दं करोति नुनम्।
सज्जन महान् न करोति गर्व, गुणविहीनाः बहुजल्पयंति।।

अधजल गगरी छलकत जाए और भरी गगरी चुपके जाए। ज्ञान के कारण, तप के कारण और धन के कारण यदि कोई अहंकारी होता है तो जानना चाहिए, वो आगे जाकर गधा होगा। गधा–जन्म क्यों मिलता है? मालूम है क्या? मैंने अपने कर्म–सिद्धांत की किताब में सिद्ध किया है। गधा को वास्तव में चाण्डाल कहा गया और गधा होता है क्यों ? गधा अधिक अपमान सहन करता है। जो मनुष्य होकर के दूसरों का सम्मान नहीं करता है वो आगे जाकर के गधा होता है। परन्तु इसका मतलब ये नहीं कि जो सामने मिला उसको नमस्कार करो। गंगा गए, गंगादास यमुना गये, यमुनादास। जैसे मैं आपको एक घटना सुनाऊँगा।

आरा में एक महिलाश्रम है। आप लोगों को मालूम होगा? वहाँ पर एक बार राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद आए। वहाँ पर एक महिला थी ब्रह्मचारिणी। जिसने बाद में दीक्षा लेकर के समाधि ग्रहण की। उसका नाम था चन्दाबाई। आप लोग ये नाम सुने

होंगे। बहुत ज्ञानी और करोड़पति परिवार की थी। तब राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद आए। तो वह सभा में उनके आने से पहले नहीं आई। उनके आने के बाद सभा में गई। तो पूछा गया कि आप पहले सभा में क्यों नहीं आई ? उसने उत्तर में कहा कि मैं यदि पहले से ही यहाँ आकर बैठती तो मुझे उनके सभा में प्रवेश करते ही खड़ा होना पड़ता और एक धर्मात्मा, एक सदाचारिणी महिला क्या नेता के सामने नम्र हो सकती हूँ ? अर्थात् नेता के सामने एक नैतिक व्यक्ति का नम्र होना माने रामचन्द्र का रावण को नमस्कार करना। वर्तमान के नेता, क्या नेता है? कोई–कोई नेता अच्छे हैं। राजेन्द्र प्रसाद अच्छे थे तो भी उस महिला से अच्छे नहीं थे। क्योंकि पंचपाप की त्यागी, सम्यक्दृष्टि वह महिला थी। वर्तमान का सबसे बड़े से बड़ा नेता ही सबसे बड़े से बड़ा ही गुण्डा है और आप लोग तो ऐसे हैं कि नेता आएगा तो उसके पीछे–पीछे भगेंगे। जैसे एक कुत्ता को रोटी खिला दो तो वो आपके पीछे–पीछे भागता है। उसी प्रकार नेता के आने पर आप नेता के पीछे–पीछे भागते हो। परन्तु साधु को बैठकर के आप लोग नमस्कार नहीं करोगे क्योंकि आपका कपड़ा गन्दा हो जाएगा। अतः सेल्यूट करोगे Good morning साहब कहोगे। हाँ, ये अहम् भाव हैं। देखो, और इधर नेता के पीछे कुत्ते के समान दोड़ोगे। ये दीनता है। मनोविज्ञान में दो प्रकार का रोग माना गया है। दीनता को भी रोग माना गया है और अहंकार को भी एक प्रकार का रोग माना गया है। इसलिये अहंकार भी नहीं होना चाहिए। और दीनता भी नहीं होनी चाहिए। जैसे एक कवि ने कहा है–

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून।।

मैं आप लोगों को उत्तम–मार्दव धर्म के बारे में बोल रहा हूँ परन्तु दीनहीन होने के लिए नहीं बोल रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि आप लोग धर्म की रक्षा के लिए विरोधी–हिंसा कर सकते हो परन्तु दीनहीन होना आप लोगों का कर्त्तव्य नहीं है। जैन धर्म, स्वावलम्बी और आत्म गौरव का धर्म है। हमको आत्म गौरव से जीना है।

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून।।

पानी माने स्वाभिमान और आत्म गौरव। मोती से पानी गया तो वह कंकर, पत्थर, हड्डी हो जाएगा। मानस माने मनुष्य। जिस मनुष्य में स्वाभिमान नहीं है, वह मनुष्य तो चलता फिरता शव है। ये सिर सामान्य नहीं है। मैंने कल बच्चों को कहा था कि ये सिर नारियल नहीं है कि जहाँ चाहो दो रुपये में खरीद कर के फोड दो। ये सिर विश्व का सर्वश्रेष्ठ सिर है। इन्द्र के सिर से भी महान् है। ये सिर सबके सामने नहीं झुकना चाहिए। परन्तु जिस के सामने झुकना चाहिए वहाँ जरूर झुकना चाहिए जैसे महाराज ने कल वज्रकर्ण का उदाहरण दिया था कि वह वज्रकर्ण सिंहोदर के सामने झुका नहीं। उसे नमस्कार नहीं किया। सम्यक्दृष्टि था। देखो, कैसे ? मार्दव–धर्म और दीनहीनता में बहुत अन्तर है। भले ही वज्रकर्ण उसके under में था

फिर भी झुक कर के उसे नमस्कार नहीं किया। क्यों ? झुकना माने अन्याय के सामने झुकना। माने हम अन्याय को स्वीकार करते हैं। हम स्वयं अन्यायी हैं। जैसे महात्मा गाँधी बोलते थे, जो अन्याय करता है वह तो अन्यायी है ही परन्तु जो प्रतिकार की शक्ति होते हुए भी अन्याय को सहन करते हैं, वो उससे भी महान् अन्यायी हैं। दिल्ली के गाँधीनगर में अभी एक घटना घटी। पुलिस और नेता लोग आयें और बोले कि महाराज ! दोषी को क्षमा करो। मैं बोला कि क्षमा करुँगा परन्तु वीरों की और जैन–धर्म की भाँति क्षमा करुँगा। कायरों की भाँति क्षमा कदापि नहीं करुँगा। अभी भी क्षमा है। जिसको लेकर के आप लोग गये हो, उसको छोड दो। जैसे अभी–अभी यहाँ हुआ था और मैं बोला था कि उस दोषी को छोड दो परन्तु I want right हम लोग कायर नहीं हैं कि हम लोग सबकी मार खाकर के कुत्ते की भाँति घर में घुस जायेंगे। जैसे पुरु की घटना आप लोग पढे होंगे।

सिकन्दर बादशाह भारत में आया। हमारे भारत में कुछ गुण होते हुए, कुछ दुर्गुण भी हैं। हमारे यहाँ संगठन नहीं है। जब पुरु को बन्दी बना दिया गया तो उसके चारों तरफ खडगधारी और नंगी तलवार धारी खडे हुए थे। बादशाह पुरु से पूछता है कि तुम क्या चाहते हो? पुरु स्वाभिमान के साथ बोलता है कि एक राजा दूसरे राजा से जो चाहता है वहीं मै चाहता हूँ। माने मैं तुम्हारा सेवक नहीं हूँ अर्थात् मैं तुम्हारी सेवा नहीं कर सकता जो एक राजा आत्म–सम्मान, आत्म–गौरव और स्वतंत्रता चाहता है, वही मैं चाहता हूँ। देखो, पुरु से प्रभावित होकर के बादशाह ने उसे छोड दिया। तो मैं बोला था कि विनय कितने हैं ? विनय पाँच प्रकार के होते हैं। ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चरित्र विनय, तप विनय, और उपचार विनय। मैंने अभी–अभी बताया था कि जब तक कि गौतम में अहंकार था, तब तक वह सम्यक्दृष्टि नहीं बन सका। परन्तु जब सम्यक्दर्शन हो गया तो जिसको पहले नमस्कार नहीं किया था उसे भ. महावीर को नमस्कार किया। परन्तु जो मिथ्यादृष्टि दे, देवी व ढ़ोगी साधु थे उनको भी नमस्कार नहीं किया तो इसका मतलव क्या हुआ ? क्या वो अंहकारी हो गया। वज्रकर्ण ने सिंहोदर को नमस्कार नहीं किया तो क्या वह अंहकारी हो गया? अरे, हम दिगम्बर जैन साधु विश्व में सबसे आत्म गौरव से रहते हैं। Practical ही आप लोग हमें देख लीजिए। क्या हम लोग आत्म गौरव को छोड़ देंगे और महाराज बोले थे कि उत्तम मार्दव धर्म है। इसलिए जो नेता लोग हैं, इन्हें खड़े होकर के नमस्कार कर लो। हम क्या नेता को नमस्कार करेंगे ? तुम करोड़पति, अरबपति हो, प्रोफेसर और लैक्चरर हो तो क्या तुमको हम लोग नमस्कार करेंगे? परन्तु इसका मतलब ये भी नहीं है कि हम लोग आप का अपमान करेंगे। अपमान भी नहीं करेंगे, जैसे राजेन्द्र प्रसाद वहाँ गये तो उनका आदर सत्कार किया गया परन्तु चंदाभाई ने उनको नमस्कार नहीं किया। क्यों? सम्यक्दृष्टि गुण पूजक होता है व्यक्ति पूजक नहीं। जिनके अन्दर गुण हो, उन्हीं के सामने नतमस्तक होना चाहिए। जिनके अन्दर गुण नहीं है, चाहे वो चक्रवर्ती हो, Minister हो, हमें कोई लेना–देना नहीं है क्योंकि हम गुण पूजक है,

पारखी हैं। हम जानते हैं कि रत्न क्या है ? कांच क्या है? जिसको इन दोनों में अन्तर नहीं मालूम, वो कांच को ही रत्न मानकर के स्वीकार कर लेगा। परन्तु हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। स्वीकार करना कोई धर्म नहीं है, महापाप है। क्यों ? विनय मिथ्यात्व है। विनय मिथ्यात्व समान कोई दूसरा पाप नहीं है। समझ में नहीं आया ना। तो मैं पांच प्रकार के विनय बता रहा था। पांच विनय में दर्शन–विनय माने सम्यक्दृष्टि और सम्यक् दर्शन का विनय करना। जैसे एक रानी थी उसके सामने एक विद्याधर क्षुल्लक वहाँ पर बह्मा, विष्णु और तीर्थंकर बनकर आगया, साक्षात् तीर्थंकर, परन्तु फिर भी वह रानी तीर्थंकर के आगे नहीं झुकी, क्यों? महावीर भगवान् तो मोक्ष चले गये थे फिर तीर्थंकर कैसे हो गया है। जैसे वर्तमान काल में एक तीर्थंकर हो गया है कांजी। वो पच्चीसवाँ तीर्थंकर बन गया और एक अमेरिका में जाकर के भगवान् बन गया रजनीश। यहाँ तो बना था पहले साधु, साधु से लेकर के आचार। कौन सा आचार ? नीबू का आचार या मिर्ची का आचार ? हाँ तो अमेरिका में गया था भगवान् बनने के लिए और वहाँ तो बागवान् ही बन गया। सम्यक्दृष्टि इन सबसे प्रभावित नहीं होता है। ज्ञानी इन सबसे प्रभावित नहीं होता है, ज्ञानी इन सबसे प्रभावित नहीं होता है। चमत्कार को नमस्कार करना जैन धर्म में नहीं है, चमत्कार को बहिष्कार है। तो आप लोगों को चमत्कार से प्रभावित होकर के किसी को नमस्कार नहीं करना चाहिए। नमस्कार करना माने आपने पाप का समर्थन किया। परन्तु इसका मतलब ये नहीं कि जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु हैं उनको नमस्कार करना छोड़कर आप लोग मिथ्यादृष्टि बन जाओ। नहीं, मिथ्यादृष्टि नहीं बनना चाहिए, सम्यक्दृष्टि बनना चाहिए। क्यों ? ऐसा है जो–जो वस्तु को चाहता है ये मनोविज्ञान है कि वो उसका आदर–सत्कार करेगा। आप यदि सुख चाहते हो, धर्म चाहते हो तो आपका मस्तक स्वयं ही गुरु के सामने नतमस्तक हो जाएगा। जिसका मस्तक गुरु के चरणों में नत–मस्तक नहीं होता है उससे महान् अज्ञानी, पाखण्डी और अन्धकार में रहने वाला कोई नहीं होता है। वो अभी तक कुछ जानता नहीं है और अन्धकार माने क्या। घोर अन्धकार में बैठा हुआ है। जैसे उल्लू है, वो रात में देख सकता है व दिन में नहीं देख सकता है। ऐसे भी कुछ उल्लू होंगे जो स्त्री के पास जाकर के उसका विनय करेंगे और उसकी पूजा करेंगे। सेठ साहूकार के पास जाकर के उसका विनय करेंगे तथा उसकी अर्चा करेंगे। नेता के पास जाकर के उसकी पूजा तथा विनय करेंगे। परन्तु साधु के पास क्या है? भगवान् के पास क्या है? वो लोग सोचते हैं कि ये क्या दे सकते हैं तथा इनका विनय करने से क्या लाभ ? नहीं, ऐसा नहीं हैं। हम विनय क्यों करते हैं ? हम साधुओं का विनय इसलिए करते हैं कि विनय से हम भगवान् बने। तो भगवान् बनना छोटा काम है ? क्या ये छोटी उपलब्धि है? ये तो सबसे महान् उपलब्धि है। इसलिए उत्तम–मार्दव को हमारे कुन्दकुन्द देव ने क्या कहा–

विगएण विप्पहीणस्य हवदि सिक्खा णिरत्थया सव्वा।
विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्याणं।।

मोक्ष का द्वार विनय। यदि विनय नहीं तो उनको मोक्ष नहीं मिल सकता। इतना ही नहीं है, ज्ञान नहीं है, तप नहीं करते हैं, उनका चरित्र और धर्म कुछ भी नहीं हैं। जैसे एक छोटा सा उदाहरण देता हूँ–

एक यमराज था। वह बहुत ज्ञानी था। ज्ञानी माने क्या ? उसे शास्त्रों का बहुत ज्ञान था। वहाँ एक आचार्य का संघ आया। सब श्रावक लोग उनके दर्शन के लिये जा रहे थे तो वह उनमें से किसी से पूछता है कि ये लोग कहा जा रहे हैं ? वो बोलता है कि मुनि महाराज आये हैं और बहुत ज्ञानी हैं। एक बोलता है कि मैं भी जाऊँगा और तर्क करके उन सबको पराजित करूँगा, तब मेरी कीर्ति होगी। वाद–विवाद का लक्ष्य लेकर के जा रहा था। वो अहंकार के कारण, अविनय के कारण, ज्ञानावरणीय कर्म का इतना उदय हुआ कि वो सब भूल गया। णमोकार मन्त्र तक याद नहीं रहा। फिर जाते–जाते वो सब भूल गया और उसे साक्षात् फल मिल गया। इसलिए बोलते हैं–

दुख में सुमरन सब करे, सुख में न कोय,
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहै को कोय।।

फिर जाकर के नमस्कार किया और दीक्षा स्वीकार करली। अंहकार करने से ज्ञानावरणीयकर्म का तीव्र बन्ध होता है।

"विद्या विनयेन शोभते"

विद्या से जीव विनय को प्राप्त होता है। जैसे एक वृक्ष है, उस वृक्ष में जब फल, फूल और पत्ते नहीं होते हैं तो वह वृक्ष एक ठूंठ के समान खडा रहता है। पत्ते आने लगते हैं तब नम्र होता है, फल आने लगते हैं तो और नम्र होता है। इसी प्रकार जो गुणी होते हैं वो नम्र होते हैं। जो जितना छोटे से छोटा होगा, उसमें गर्व–अंहकार उतना ही बढता जाएगा और बडे से बडा होगा, उसका गर्व उतना ही कम होता जाएगा। अंहकार क्षुद्रता का प्रतीक है और नम्रता गुण का प्रतीक है। इसलिए हमारे यहाँ नम्रता को रखा गया है। क्यों ? हिन्दू धर्म में कहा गया है –

लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर।।

जो नम्र होगा उसे प्रभुता मिल जाएगी और प्रभु भी मिल जाएंगे और प्रभुता से प्रभु दूर होते जाएंगे। इसलिए अंहकार को हमारे यहाँ मद कहा गया है। मद जैसे दारु पीने के बाद नशा चढ जाता है और कुछ ज्ञान नहीं रहता, इसी प्रकार मद चढने से कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है और ज्यादातर व्यक्ति झूठे मद का पोषण करते हैं।

एक बुढिया थी। वह पान खाती थी। वो जो पान खाती थी, उसकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता था कि वो पान खाती है, उसका मुख लाल है। तो वो यही सोचती रहती थी कि अरे, मैं इतना पान खाने पर इतना रुपया खर्च करती हूँ तो भी मेरी कोई प्रशंसा नहीं करता। तो देखो, प्रशंसा के लिए मनुष्य क्या–क्या करता है? अंहकार एवं अहम् की पुष्टि के लिए। तो एक दिन उसने अपनी कुटी को आग लगा दी। आग लगने पर सब लोग पानी डालने के लिए आये तो वह बुढिया एक से बोली

कि बेटा ! ये जो पान का बटुआ है, ना ये तो ला दो जरा। तो अग्नि लगने के कारण अंधकार रात में प्रकाश हो रहा था। तो वह बोलता है कि अरे, बुढिया माँ। तुम क्या पान भी खाती हो? तब बुढ़िया उसे गाली देने लगती है कि अरे छोकरा! तुम पहले ही ये बात बोल देते कि अरे, बुढ़िया माँ ! क्या तुम पान भी खाती हो ? तो मैं अपना घर क्यों जलाती? तुम्हारे पहले से मेरी प्रशंसा न करने के कारण ही मैंने अपना घर जलाया। यानी कि व्यक्ति अपनी प्रशंसा, अंहकार के लिए क्या–क्या करता है ? आप लोगों को मालूम होगा कि यूनान में एक दार्शनिक हुए सुकरात। सुकरात एक दिन जमींदार के घर गये वो जमींदार बहुत ज्यादा अंहकारी था। वो अपना अंहकार दिखाने लगा कि मेरे यहाँ घोड़ा है, हाथी है। ज्ञानी लोग भले ही नम्र होते हैं परन्तु दूषित अंहकार को सहन नहीं करते हैं। क्यों ? हमें तुम्हारे अंहकार से क्या लेना देना ? कुछ नहीं। जो गरीब लोग हैं वे और करोड़पति भी जैसा है। हम ना तो किसी लाखपति को विशेष आशीर्वाद देते हैं, ना किसी खाकपति को घटिया आशीर्वाद देते हैं। जो साधु होकर के ऐसा करता है, वो साधु नहीं है। भ्रष्ट है क्योंकि सम्पूर्ण वसुन्धरा साधु के लिए कुटुम्ब से समान है। सुकरात तो ज्ञानी थे ही तो उसको अंहकार सहन नहीं हुआ। बोले कि विश्व का Map ले आओ। मैप लाया गया। बोले कि ग्रीक कहाँ है? यहाँ है। तुम्हारी जमींदारी व तुम्हारे Building कहाँ है? अरे, महाराज! क्या इतने छोटे मैप में मेरी जमींदारी और राज महल का चिन्ह रहेंगा ? तो सुकरात बोलते हैं कि अरे जब इस मैप में तुम्हारी जमीदारी का नक्शा नहीं है और Building का धब्बा तक नहीं है तो तुम क्यों गर्व करते हो ? विचार करो। आप लोगों को मालूम होगा कि चक्रवर्ती जय की प्रशस्ति लिखने के कहाँ जाता है ? नाभिगिरी में, नाभिगिरी पहाड़ में लिखने के लिए एक ईंच भी जगह नहीं मिली। जब से सोचता है कि मुझे यहाँ अपनी प्रसिद्धी लिखनी ही है तो कांकणि–यंत्र से पहले लिखी हुई प्रशस्ति को मिटाता है। तो आकाशवाणी होती है कि अरे, चक्रवर्ती! तुम जिस प्रकार दूसरों की प्रशस्ति तुम मिटाकर अपना लिख रहे हो वे भी कई बार मिट गई हैं और उसके ऊपर लिखी गई हैं। तुम क्या सोचते हो ? इस भारत देश के पहले चक्रवर्ती हो। तुम्हारे से पहले करोडों और असंख्यात चक्रवर्ती हो गये। उनका मान भंग हो गया। अरे, क्या किसके लिए मान ? जो अभी राजा मरने के बाद कीडा हो जाता है। हाँ जो मान नहीं करता वो धर्मात्मा कुत्ता भी आगे जाकर के देव बन जाता है। हाँ, तो मान किसके लिए ? जो मान करते हैं और अंहकार के लिए काम करते हैं, वो आगे जाकर के हाथी होते हैं–

मान बडाई कारणे, जो धन खर्चे मूढ।
मर करके हाथी होएगा, आगे लटके सूंड।।

सबसे बडी नाक किसकी है ? हाथी की। क्यों ? वो नाक चाह रहा था माने अहंकार–अहम् की पुष्टि। इसलिए मर करके हाथी बन गया। एक Tube light दान देते हैं ना, क्यों देते हैं ? प्रकाश के लिए। Tube (ट्यूब) के ऊपर लिखेंगे कि मेरे लडके के पोते के लडके ने इस Tube का दान दिया। इतना पोत देंगे कि प्रकाश

ही नहीं आयेगा। तो फिर तुमने दान क्यों दिया ? अहंकार की पुष्टि के लिए। नहीं, ये सब अहम् भाव है। इससे कल्याण नहीं होता। इसलिए कहा गया–

"गुप्त दान महा कल्याण"

आज क्या है? आज उत्तम–मार्दव धर्म का दिन है। क्या आज का दिन ही उत्तम–मार्दव धर्म होता है? जीवन में कभी भी ये गलती मत करना। आज उत्तम–मार्दव धर्म के बारे में हमने उपदेश सुना हैं। Training लिए हैं। जीवन में धर्म को उतारने के लिए रुढि को छोडो। जीवन में कुछ कल्याण होगा, इसलिए रुढिवादिता का छोडो। इसलिए आप लोगों को सम्यक्दृष्टि बनना है तो देव–शास्त्र गुरु का विनय करो, दूसरे किसी को अविनय मत करो। परन्तु दीन भी मत बनो। स्वाभिमानी बनो, आत्म–गौरव का धारण करो। आत्म–गौरव के लिए कहा है :–

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।
स उच्चैश्चैतसां मानःपरः स्वपरघातकः।।

इस श्लोक में आचार्य ने सिद्ध किया है कि अपमान किसका होता है एवं स्वाभिमान किसे कहते हैं ? जिस कर्म को करने से अपमान होता है, निन्दा होती है उसी प्रकार कर्म को जो दूर से त्याग कर देता है, वो ही स्वाभिमानी है। देखो, आप लोग दारु क्यों पीते हो ? अन्याय, अत्याचार क्यों करते हो ? भ्रष्टाचार क्यों मचाते हो ? इसका मतलब है कि आपके अन्दर स्वाभिमान नहीं है, आत्म–गौरव नहीं है। जैसे जापानियों में आत्म–गौरव है। वहाँ उनमें राष्ट्रीय चारित्र है। तुम लोगों में राष्ट्रीय चारित्र भी नहीं है। तुम लोगों में भ्रष्टाचार है लेकिन आत्म–गौरव नहीं है। देश और धर्म दोनों के ऊपर गौरव नहीं है। तुम लोगों को क्या तब लज्जा नहीं आती है ? जब तुम दारु पी करके Road पर सो जाते हो और कुत्ता लोगों के मुख पर पेशाब कर देता है, क्या तब तुम लोगों का अपमान नहीं होता ? तुम्हारे अन्दर स्वाभिमान एवं आत्म–गौरव नहीं है; इसलिए ऐसा करते हो। महिलाएँ भी रास्ते में पशु–पक्षियों के समान खाती रहती हैं। मैंने खुद देखा है। काल्पनिक नहीं बोल रहा हूँ। मैं धर्म के बारे में बिना परीक्षण के नहीं बोलता हूँ। मैंने खुद देखा है कि मार्ग में नवयुवती महिलाएँ साधु के सामने, भरे समाज के सामने चाट चाट रही थी। क्या ये सब तुम्हारे लिए अपमान नहीं है? तुम्हारे अन्दर क्या ये स्वाभिमान एवं आत्म–गौरव है ? तुम्हारे समान दीनहीन और कौन होगा? जो कि तुम्हारे समान लोग दारु पी करके Road पर गिरते हो, पेशाब कर देता है कुत्ता, तो भी दारु पीते रहते हो। क्या ये तुम्हारे अन्दर आत्म–गौरव है? इसलिए ही देश का अर्धःपतन हो रहा है। आत्म–गौरव को जगाओ। अभी पंचमकाल में आत्म–गौरव नहीं छुटेगा। जबकि तक श्रेणी आरम्भ नहीं होगा। छट्ठे–गुणस्थान तक आत्म–गौरव रहेगा और रखना चाहिए। बिना आत्म–गौरव के कोई भी धर्मात्मा नहीं हो सकता है, कोई भी पाप का त्याग नहीं कर सकता है। जैसे कि एक चोर था। उसकी शोभा–यात्रा निकल रही थी। किसके ऊपर ? गधे के ऊपर और बाल मुंडवा करके। चप्पल–जूते का हार पहना करके। शोभा–यात्रा जब घर के

सामने आयी तो उसकी रानी खडे होकर के देख रही थी। माने चोर की Wife, वो चोर बोलता है कि अरे, क्या देखती हो ? पानी गर्म करके रखो। मैं अभी शोभा–यात्रा से आता हूँ। नहा–धोकर के Tip-Top होकर के साहब–बाबू बन जाऊँगा। देखो, क्या उसमें आत्म–गौरव है ? मंत्री–पुत्र और राजा–पुत्र आदि ने चोरी की। चोरी करने के कारण तो सबको विभिन्न दण्ड दिया गया और राज–पुत्र को केवल धिक्कारा गया। तो सबने सोचा कि अरे, राजा ने तो अन्याय किया है और राजा बोलता है कि मैंने न्याय किया है। तुम कुछ क्षणों के बाद देख लेना। कुछ क्षणों के बाद राजकुमार ने भरी सभा में अपमान न सहन कर सकने के कारण आत्मघात कर लिया क्योंकि अपमानरूपी जीवन जीने से मरना श्रेष्ठ है। मनुष्य कोई कुत्ता नहीं है जो अपमानकारी जीवन जीवेगा। विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृति है। स्वाभिमान से जीओ, नहीं तो मर जाओ। इसलिए स्वाभिमान से वो ही जी सकता है जो अन्याय व पाप नहीं करता। जो पाप करता है वो स्वाभिमान से नहीं जी सकता, कभी स्वाभिमान से बोल भी नहीं सकता। इसलिए मैं आप लोगों को बोलता हूँ कि गर्व को छोडो और स्वाभिमानी बनो। निराभिमानी तो पंचम–काल में हो ही नहीं सकता है। जब तीर्थंकर केवली बनते हैं तब निरभिमानी होते हैं। अभी तो निरभिमानी कोई हो ही नहीं सकता है। जो स्वाभिमान को छोड देगा वो दीनहीन हो जाएगा। इसलिए मैं आप लोगों से बोलता हूँ कि अहंकार छोडो और स्वाभिमानी बनो। देव–शास्त्र गुरु का विनय करो, प्रत्येक का विनय मत करो व अपमान भी मत करो। जैन धर्म जो यथार्थ धर्म है, उसके अनुसार आप लोग चलो। आप लोग भी एक दिन भगवान् बन जाओगे।

1) धर्म पुरूषार्थ–

धार्मिक कार्यक्रम, धार्मिक पंथ–मत–सम्प्रदायों में भी धर्म के जो यथार्थ स्वरूप समता, सहिष्णुता, शान्ति पवित्रता, सहज–सरलता, प्रेम, सहयोग, परोपकार, एकता, दया, क्षमा, निर्लोभता, त्याग, सादा–जीवन–उच्च विचार आदि हैं प्रायः उससे विपरीत विषमता, असहिष्णुता, अशान्ति आडम्बर दिखावा आदि पाई जाती हैं। बाह्य क्रिया–काण्ड, शारीरिक क्लेशकारक परन्तु भावात्मक–संक्लेश कारक भी क्रियाओं को धर्म मानते हैं । केवल केंचुली त्याग से विषधर सर्प जिस प्रकार और भी खतरनाक हो जाता है उसी प्रकार ऐसे धार्मिक व्यक्ति खतरनाक होते हैं।

2) अर्थ पुरुषार्थ–

अर्थात् धनार्जन जो न्याय–नीति से अहिंसा पूर्ण उपाय से धनार्जन करके परिवार पोषण, दान, परोपकार, साधु–संत की सेवा, धर्म–प्रचार, दीन–दुःखी–रोगी–पशु–पक्षी आदि के उपकार में लगाना चाहिए किन्तु वह धनार्जन प्रायः अन्याय पूर्ण नीति से, हिंसापूर्ण व्यवसाय से नशीली वस्तु के क्रय–विक्रय से विविध प्रकार के भ्रष्टाचार–शोषण आदि से करके फैशन–व्यसन आदि में अपव्यय करते हैं।

अध्याय–3

समस्या–रोग के कारण अन्ध–आधुनिकता निवारक है सरल जीवन आध्यात्मिकता।

आधुनिक युग भौतिक, वैज्ञानिक, बौद्धिक, संचार क्रान्ति, अन्तरिक्षयात्रा, ग्लोबलाइजेशन का होने के कारण आज मानव (अनेक मनुष्य) पहले से अधिक सुख–साधन सम्पन्न हैं परन्तु सुख–शान्ति से रहित हैं, साक्षर हैं, परन्तु राक्षस स्वरूप हैं। दूर–अतिदूर से जानकारी प्राप्त करता है परन्तु स्व–स्वजन–सज्जन–आस–पडौस से दूर–अतिदूर है, अन्तरिक्ष यात्रा कर रहा है किन्तु अन्तःकरण से अनभिज्ञ है, ग्लोबलाइजेशन के कारण पृथ्वी एक संयुक्त परिवार हो गयी है परन्तु परिवार खण्ड–विखण्डित हो रहा है। इन सब कारणों से मानव शारीरिक–मानसिक–आध्यात्मिक दृष्टि से अनेक समस्या व रोगों से आक्रान्त है, संत्रस्त है। इसके निवारण के लिए मैंने (आचार्य कनकनन्दी) 1. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान 2. आदर्श विचार–विहार–आहार 3. शारीरिक–मानसिक–आध्यात्मिक–स्वास्थ्य के विविध आयाम 4. तत्त्वचिन्तन–सर्वधर्म समता से विश्वशान्ति आदि कृति की रचना की है। इस लघु शोध लेख में अन्ध–आधुनिकता के कारण अस्त–व्यस्त–संत्रस्त–अस्वस्थ– आपा–धापी–दौड–धूप जीवन जीने के कारण समय का अभाव। रोना रोने वालों के लिए कुछ मार्गदर्शन कर रहा हूँ परन्तु यह वाचन–पाचन–अनुकरण करने वालों के लिए ही मार्ग दर्शक बनेगा, अन्यथा नहीं।

अन्ध–आधुनिकता की समस्यायें एवं रोग

वैसे तो हर युग में कुछ न कुछ समस्यायें होती हैं परन्तु इस लेख में उनका सन्दर्भ नहीं है। आधुनिक भौतिक युग की भौतिक–अनावश्यकता के अनुसार भौतिक आविष्कार हो रहा है और इस आविष्कार के कारण भौतिक आवश्यकता बढती जा रही है। इस आवश्यकता–आविष्कार के चक्रवृद्धि ब्याज दर के चक्कर में अनेक भँवर उत्पन्न होते जा रहे हैं जिस में फंसकर मानव दिग्–भ्रमित, पीडित, विक्षुब्ध है। इसके विभिन्न रूप हैं–भावप्रदूषण, वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण, मृदाप्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, अतिवृष्टि–अनावृष्टि, भूकम्प, सुनामी, बाढ, अकाल तथा विभिन्न शारीरिक–मानसिक–आध्यात्मिक रोग–फैशन–व्यसन, दुर्घटना, मृत्यु, आत्महत्या, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, युद्ध–विद्रोह, हत्या आदि आदि।

समाधान–उपाय

समस्या है तो समाधान है और समाधान उस समस्या से ही आविष्कृत होता है। उन सब समस्याओं के सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ, शाश्वतिक समाधान के उपाय हैं– असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय–मृत्योर्मा अमृतं गमय। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः !! इसके अन्तर्गत या इसके अतिरिक्त अथवा कुछ आधुनिक उपायों का भी दिग्दर्शन निम्नोक्त है।

व्यापक समाधान–उपाय–

माता के दुग्धपान के समान प्रकृति का दुग्धपान करना चाहिए, न कि रक्तशोषण। विश्वरूपी शरीर के अंग–उपांग स्वरूप प्रत्येक जीव–प्रजाति, जल, वायु, मृदा, वनस्पति आदि की सुरक्षा, समृद्धि, स्वस्थता से मनुष्य से लेकर जीव जगत् एवं प्रकृति की सुरक्षा, समृद्धि, स्वस्थता संभव है। शरीर के किसी भी अवयव के विकलता, अस्वस्थता, हानि से जिस प्रकार शरीर प्रभावित होता है, उसी प्रकार प्रकृति–ब्रह्माण्ड के बारे में जानना चाहिए। जैन धर्मानुसार मानव जब भोग भूमि में प्रकृति की गोद में प्राकृतिक संसाधन का समुचित प्रयोग करके सरल–सहज जीवन जीता था, तब वह सुख–शान्तिमय नीरोग जीवन दीर्घकाल तक जीकर अन्त में सुख से मरता था। इसी प्रकार विज्ञान के अनुसार भी प्राचीन मानव भी आधुनिक–अन्ध–जीवन शैली वाले मानव से अधिक स्वस्थ जीवन जीते थे। भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के अनुसार जो सम्पूर्ण राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या, घृणा, आकर्षण–विकर्षण आदि से रहित होता है, वह सच्चिदानन्द, सत्यं–शिवं –मंगलम् होता है। इससे सिद्ध होता है कि जो जितना–जितना सहज–सरल, पवित्र, शान्त साम्य होता जायेगा वह उतना ही उतना स्वस्थ, सुखी होता जायेगा।

व्यक्तिगत समाधान–उपाय

जीव को जो कुछ सुख, दुःख, रोग आदि होते हैं उसके मूल कारण स्व–कर्म हैं तो बाह्य कारण असम्यक् विचार, आहार, व्यवहार, वातावरण आदि है। अतः जीव को सुखी होने के लिए सम्यक् विचार आदि करना चाहिए।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भुजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ।।1015

यत्नपूर्वक गमन करें, यत्नपूर्वक खडे हों, यत्नपूर्वक बैठें, यत्नपूर्वक सोवें, यत्नपूर्वक आहार करें और यत्नपूर्वक बोलें, इस तरह करने से पाप का बंध नहीं होगा।

जदं तु चरमाणस्स दयापेहुंस्स भिक्खुणो।
णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि।1016

यत्नपूर्वक चलते हुए, दया से जीवों को देखने वाले साधु के नूतन कर्म नहीं बँधते हैं और पुराने कर्म झड जाते हैं। साधारणतः जीव भोजन के कारण, असम्यक् प्रवृति के कारण, अयत्नपूर्वक उठने, बैठने, बोलने के कारण पाप कर्म को बाँधता है परन्तु वही कार्य यदि सावधानीपूर्वक विवेकसहित जीवों की रक्षा करते हुए करता है तो पाप बंध कम होता है। नारायण कृष्ण ने भी गीता में कहा है–

युक्ताहारविहारस्य युक्ताचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वावबोधरस्य योगो भवति दुःखहा।।

जो मनुष्य आहार–विहार में, दूसरे कार्यों में, सोने जागने में परिमित रहता है, उसका योग दुःख भंजन हो जाता है।

नात्यश्नतस्तु योगेऽस्ति न चैकान्तमनश्यतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रता नैव चार्जुन।।

हे अर्जुन! यह समत्वरूप योग न तो ठूंसकर खाने वाले को, न उपवासी को, वैसे ही, वह बहुत सोने वाले या बहुत जागने वाले को भी प्राप्त नहीं होता।

नित्यं हिताहार विहार समीक्ष्यकारी विष्येष्वसक्तः।
दाता समः सत्य परः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।। अष्टा.ग 36

जो सतत हितकर आहार, योग्य विहार करता है, विवेक, पूर्वक परिणाम से विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पंचेन्द्रियजनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथा योग्य को यथायोग्य दान देता है, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र में समता भाव धारण करता है, सत्यग्राही, क्षमावान्, देव–शास्त्र–गुरु, गुणीजन–वृद्धजनों की सेवा करता है, वह निरोग होता है।

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात् कुप्यान्ति भूतसामान्यलक्षणाः।।30 (च.चि.अ.3)

काम, शोक तथा भय से वायु का प्रकोप होता है, क्रोध से पित्त का प्रकोप होता है, भूताभिषङ्ग से तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं तथा तत्तद्भूत के लक्षण भी प्रकट होते हैं।

शान्तितुल्यंतपो नास्ति न संतोषत्परमं सुखम्।
न तृष्णया परो व्याधिर्न च धर्मो दया परः।।13

शान्ति के समान कोई तप नहीं है, तृष्णा से बडी कोई व्याधि नहीं है और दया से बडा कोई धर्म नहीं है।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनुः संतोषं नन्दनंवनम्।।14

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और संतोष नन्दनवन है।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नष्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे।।15

जिन लोगों के हृदय में परोपकार की भावना विद्यमान रहती है, उनकी सब विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और पद–पद में सम्पत्तियाँ मिलती रहती हैं।

सन्तोषमृतप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।।3

संतोषरूप अमृततृप्त मनुष्यों को जो सुख और शान्ति प्राप्त होती है, वह धन के लोभ से इधर–उधर मारे–मारे फिरने वालों को कैसे प्राप्त होगी?

मनः शमं न गृह्णाति, न पीती सुखमश्नुते।
न निंदा न धृतिं याति, द्वेष शल्ये हृदि स्थिते।। त्याज्य (द्वेष भाव) अवदान

जब द्वेषरूपी बाण हृदय में चुभ रहा है, तब तन मन अशान्त रहता है,

पारस्परिक प्रेम के सुख का अनुभव नहीं होता और न मानव हो सकता है और न ही धैर्य धारण कर सकता है। अतः द्वेष भावना को हृदय में नहीं रखना चाहिए।

व्यक्ति स्वयं को आधुनिक प्रगतिशील, साक्षर, सम्पन्न दिखाने के लिए जो कुछ फैशन–व्यसन (कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग आदि, तम्बाकू, शराब, सेवन), प्रतिस्पर्द्धापूर्ण तेज रफ्तार वाला जीवन ढो रहा है उससे जो रोग होता है उसे लाइफ स्टाइल डिजीज या डिजीज ऑफ सिविलाइजेशन कहते हैं। इसके अनेक रूप हैं। यथा– तनाव, कैंसर, डाइबिटीज, हृदय रोग, सीरोसीस, ब्लड प्रेशर, दर्द, अल्सर, मोटापा, माइग्रेन, निद्रा, अस्वाभाविक थकावट, मानसिक असन्तुलन, मानसिक अस्थिरता आदि। यह सब रोग साइको–सोमेटि हैं अर्थात् रोग की जड मन में होती है किन्तु प्रभाव शरीर पर पडता है। इसका कारण है असंतुलिन मानसिकता, जीवन शैली से ऊर्जास्तर नीचे चला जाता है जिससे रोग प्रतिरोधकशक्ति क्षीण हो जाती है। इसके साथ–साथ विभिन्न ग्रन्थिओं से विषाक्त स्राव निकलना है जो उपर्युक्त रोगों के लिए सहायक बनता है। तनाव और स्ट्रेस से मांस पेशियाँ हमेशा अकडे रहती हैं जिससे अत्यधिक मात्रा में लेक्टिक एसिड पैदा होता है, जो मांसपेशियों में दर्द और ब्लड सर्कुलेशन में मिलने पर थकान पैदा करता है। सब कांशियस मांइड से मानसिक तनाव का सम्बन्ध होने से इस के ऊपर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है जिससे व्यक्ति क्रोध करता है और अपराध तथा दुर्घटना कर लेता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार–लोग पृथ्वी पर उपलब्ध संसाधनों की बडी मात्रा की खपत के बिना लंबे व खुश जीवन जी सकते हैं। 178 राष्ट्र वाले हैप्पी प्लेनेट इंडेक्स ने पृथ्वी पर साउथ पैसिफिक आइलैंड ऑफ वनौअतु को सबसे प्रसन्न राष्ट्र घोषित किया है जबकि इंग्लैण्ड को 108वां स्थान मिला। यह सूची उत्पादन स्तर जीवन की महत्त्वाकांक्षा और प्रसन्नता पर आधारित है, बजाय राष्ट्रीय आर्थिक पूंजी–पैमानों के, जैसे जीडीपी घरेलू उत्पाद। लेटिन अमरीकी देशों ने सूची के पहले दस स्थानों पर अपना वर्चस्व बनाया जबकि अफ्रीकी और पूर्वी यूरोपीय देशों ने निचले दस स्थानों पर अपना नाम दर्ज किया। विश्व के सबसे बडे आर्थिक संपन्न देशों में से जर्मनी ने 81वां, जापान ने 95वां, जबकि अमरीका ने 150वां स्थान प्राप्त किया। लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स के सेंटर फॉर इकोनोमिक्स परफारमेन्स के वेलबीइंग कार्यक्रम के निदेशक रिचर्ड लायर्ड बताते हैं कि पिछले 50 वर्षों में पश्चिम में जीवन स्तर में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है लेकिन हमें प्रसन्नता नहीं प्राप्त हुई, यह दर्शाता है कि हमें आर्थिक विकास के लिए मानवीय रिश्तों का बलिदान नहीं देना चाहिए जो कि प्रसन्नता का मुख्य स्रोत है।

सामान्य स्थिति में श्वेत रक्त कोशिकायें या इम्यून सेल बैक्टीरिया, वायरस; प्रदूषण आदि बाहरी तत्त्व से लडते हैं। असामान्य या अत्यधिक तनाव में दिमाग इन श्वेत रक्त कोशिकाओं को नकारात्मक संदेश भेजता है जिसे वे कोशिकायें नहीं कर पाती हैं इससे व्यक्ति रोगी हो जाता है। हाइपोथैलेमस के सकारात्मक क्रियाओं और

संदेश के परिणाम स्वरूप व्यक्ति बीमार नहीं पडता है, यह पिट्यूटरी और ऐड्रीनल को व्यस्त करते हैं, कॉर्टिसोल उत्पन्न करते हैं जो श्वेत रक्त कोशिकाओं को अधिक से अधिक विकसित करता है, इससे रोग प्रतिरोधक शक्ति बढती है। जैन धर्म में वर्णित है कि तीर्थंकर के जन्मतः पूर्ण रक्त श्वेत होता है और वे जीवन भर पूर्ण स्वस्थ रहते हैं। वात्सल्य भाव आदि कारणों से संक्रामक रोगियों की सेवा करने वाले नाइटेंगिल, मदर टेरेसा, सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे आदि निरोगी रहे।

कर्म सिद्धान्त, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, मनोविज्ञान, आधुनिक विज्ञान, योगविज्ञान आदि के अनुसार स्वास्थ्य, सुख, शान्ति के लिए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, मृदुता, सरल–सहज, पवित्रता, संतोष, धैर्य, संयम, सहिष्णुता–परोपकार, दान, सेवा, सादा सात्विक–पौष्टिक–शाकाहार–फलाहार–दुग्धाहार, भ्रमण, मित्रता, प्रार्थना, स्वच्छ–पवित्र–शान्त वातावरण, सज्जन–साधुसंगति, महापुरुषों की सेवा, बच्चों के प्रति स्नेह, बडों के प्रति सम्मान, अप्रतिशोध की भावना, महान् लक्ष्य दृढ इच्छा शक्ति, उचित विश्राम एवं निद्रा, सत्यसाहित्यों का स्वाध्याय, विधेयात्मक विचार, रुचि का विषय, अच्छे कार्य करना, अद्रोह, मंत्र–जाप, पूजा–पाठ, उपवास, हित–मित–प्रिय वचन स्वस्थ आहार–विहार–विचार–व्यवहार आदि स्वस्थ, शान्तमय, उन्नत जीवन के मुख्य घटक हैं।

भाव प्रदूषण से उत्पन्न विभिन्न रोग

ईर्ष्या–क्रोध से पित्त की वृद्धि, इन्द्रिय–शक्ति में कमी, पथरी, जलन, लीवर खराबी, अल्सर, विवेक की कमी, लडाई–झगडा, गाली, मार–पीट से हत्या तक संभव है।

अभिमान–दंभ से वात्–पित्त, कफ की वृद्धि होती है जिससे अनेक रोग होते हैं। इससे जीवन की सहजता–सरलता–मधुरता–नष्ट हो जाती है, सहयोग–सम्मान नहीं मिलता है जिससे अहंग्रन्थी–हीनग्रन्थी पनपती है।

असत्य–छल–कपट–से जीवन शक्ति नष्ट होती है, हृदय और मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं की हानि होती हैं, हृदय रोग, पागलपन, पथरी, लकवा रोग होते हैं, कोई उस पर विश्वास नहीं करते, लेन–देन–सहयोग–सहकार उससे कोई नहीं करते।

हिंसा से क्रोध, मान, माया, लोभ उत्पन्न होते हैं, हृदय कठोर हो जाता है, रक्त गरम हो जाता है, जिससे शरीर में वायु, पित्त, कफ के विचार उत्पन्न होते हैं जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

असंयम–से समय, शक्ति, साधन, बुद्धि का दुरुपयोग होता है और विभिन्न समस्या, दुर्घटना, बीमारियों से लेकर मृत्यु तक होती हैं। यथा–**जिह्वा (मन) के असंयम** से मद्य, मांस, तम्बाकू के सेवन से कैंसर आदि रोग होते हैं, **अधिक भोजन** से अपच, पेट दर्द, मोटापा आदि होते हैं–जिससे डायबिटीज आदि रोग होते हैं, कठोर–असत्य वचन बोलने से मस्तिष्क की ज्ञान तन्तुओं को हानि पहुँचती है, जिससे जीभ कैंसर या लकवा रोग हो सकता है। कठोर–असत्य बोलने वालों पर कोई विश्वास नहीं करता है। इसी प्रकार घ्राण, चक्षु, कर्ण, स्पर्श, मन, धन, समय, साधन आदि के असंयम से

भी विभिन्न हानियाँ, बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, दुर्घटना होती है तथा मृत्यु तक हो जाती है। यथा–स्पर्शन इन्द्रिय (कामुकता) के असंयम से परस्त्रीगमन, वेश्यागमन से जानलेवा–लाइलाज एड्सरोग हो जाता है, अधिक अयोग्य T. V. देखने से आँख खराब होती है, मोटापा बढता है, समय बर्बाद होता है, अश्लीलता–फैशन–व्यसन–हिंसादि प्रवृत्ति बढती है आदि। भारत में ही 50 लाख से अधिक एड्स रोगी हैं तथा हर वर्ष 10 लाख कन्या–भ्रूणों की हत्या होती है।

विभिन्न भौतिक प्रदूषण से उत्पन्न विभिन्न रोग

1. वायु प्रदूषण– से फेफडों के कैंसर, खाँसी, लकवा, हृदय रोग, छींक, थकान, दमा, श्वसनीय शोध, गले का दर्द, निमोनिया, त्वचा तथा आँखों में जलन, सिरदर्द, अनिद्रा, चिडचिडापन इत्यादि होते हैं तथा मृत्यु तक संभव है।

2. जल प्रदूषण–से फ्लोरोसिस, हैजा, अमीबायसिस, संक्रामक पीलिया अथवा हैपेटाइटिस, टाईफाइड, विभिन्न प्रकार के चर्म रोग होते हैं तथा मृत्यु तक संभव है।

3. मृदा प्रदूषण– से डायरिया, टाइफाइड, टी.बी., मलेरिया, डेंगू, धूल एलर्जी, आँखों के रोग, पोलियो इत्यादि रोग होते हैं तथा मृत्यु भी संभव है।

4. ध्वनि प्रदूषण– से बहरापन, सिरदर्द, न्यूरोटिक, प्रेसबाइकुसिस, चिडचिडापन, अनिद्रा, हृदयघात, उच्च रक्तचाप, मानसिक अस्थिरता, पागलपन, दुश्चिंता, उद्वेग, स्मरण शक्ति का ह्रास, समय से पूर्व बुढापा इत्यादि रोग होते हैं।

5. रेडियो धर्मी प्रदूषण–से विकलांगता/अपंगता, कैंसर, रक्त की कमी, बालों का झडना, गर्भाशय में शिशुओं की मृत्यु, असमय में बुढापा, प्रजनन क्षमता का ह्रास, विभिन्न त्वचारोग, हाथ–पैरों में जलन, थकान, दाँतों का गिरना, आँखों के लैंस को हानि इत्यादि रोग होते हैं।

विश्व में सर्वाधिक डायबिटीज से पीडित मरीज भारतीय हैं। 1995 तक इनकी संख्या 19.3 मिलियन थी जिसके 2025 तक 57.2 मिलियन तक होने की संभावना है। 2000 तक तनाव के रोगियों की संख्या 118.2 मिलियन थी, यह संख्या 2025 तक 213.5 मिलियन होने की संभावना है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनुमान लगाया है कि 2010 तक भारत में हृदय रोगियों की संख्या 100 मिलियन से ज्यादा होगी।

भारत में हर साल 30,000 व्यक्ति कैन्सर के कारण मर जाते हैं, प्रत्येक 12 में से 1 व्यक्ति को 64 वर्ष की उम्र तक कैन्सर के किसी न किसी प्रकार से ग्रसित होने की संभावना होती है। मैकिंग से आकलन के अनुसार पिछले दशक में हिन्दुस्तानियों ने संक्रमण और कुपोषण से होने वाली बीमारियों की तुलना में जीवनशैली के कारण होने वाले रोगों पर ज्यादा धन खर्च किया। स्तन कैंसर की तुलना में हृदय रोग और स्ट्रोक महिलाओं की मृत्यु के ज्यादा बडे कारण हैं। मरने वाली प्रत्येक 2 महिलाओं में से 1की मृत्यु हृदय घात के कारण होती है जबकि स्तन कैंसर में यह आंकडा प्रत्येक 28 में से 1 तक सीमित है। हृदय रोग स्त्रियों को

मृत्यु देने के मामले में शीर्ष पर है। विश्व भर में 300 मिलियन लोग मोटापे से पीडित हैं। इस संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है दुनिया में हर साल 17 मिलियन लोग असाध्य रोगों के कारण अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। इनमे से 80 प्रतिशत मौतें निम्न व मध्यम आय वर्ग के देशों में होती हैं। दक्षिण–पूर्व एशिया में 54 प्रतिशत मौतों का कारण ये असाध्य रोग ही हैं। इस क्षेत्र में अगले 10 सालों में 89 मिलियन मौतें इन्हीं असाध्य रोगों के कारण होंगी। इनमें से 60 मिलियन मौतें सिर्फ भारत में ही होंगी।

भारत को और देशों के मुकाबले हृदय रोगों के कारण ज्यादा नुकसान उठाना पड रहा है। हृदय रोगों के कारण भारत में वर्ष 2000 में 34–64 आयु वर्ग में 9.2 मिलियन मौतें हुई।

भारत में सिर्फ घरेलू प्रदूषण से प्रति वर्ष पांच लाख लोगों की मौत हो जाती हैं। इनमें बडी तादाद महिलाओं और बच्चों की होती है।

शहर दुश्मन है

हाल ही हुए एक अध्ययन के अनुसार शहरी महिलाएँ सबसे ज्यादा तनावग्रस्त रहती हैं। शहरी महिलाओं पर हुए एक सर्वे के अनुसार बडे शहरों में करीब 77 प्रतिशत महिलाएँ अत्यधिक तनाव या सामान्य तनाव से ग्रसित रहती हैं। 28 प्रतिशत युवा महिलाएँ इस तनाव को कम करने के लिए शराब का सेवन करती हैं।

इस शोध में करीब 68 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे आराम के लिए बहुत कम समय निकाल पाती हैं। युवा महिलाओं का मानना हैं कि उन्हें इतना तनाव कभी नहीं रहा। 45 प्रतिशत महिलाओं ने कहा, तनाव को कम करने के लिए उन्होंने जिम जाना शुरू किया। 29 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे ऊर्जाहीन महसूस करती हैं, वहीं 20 प्रतिशत महिलाएँ खुद को हमेशा बीमार पाती हैं। पांच में से सिर्फ एक महिला का कहना था कि तनाव से उसके परिवार और रिश्तों पर फर्क पडता है। युवतियों में पाचन शक्ति का कमजोर होना भी पाया गया। 35 प्रतिशत महिलाएँ रोजमर्रा की दिनचर्या को तनाव का मुख्य कारण बताती हैं। वहीं 48 प्रतिशत हर रोज के ट्रैफिक जाम में फँसने को इसका कारण मानती हैं।

3) काम पुरूषार्थ–

जो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने में असमर्थ है वह 4 पुरूषार्थ केनिमित्त योग्य सन्तान के लिए योग्य रीति से विवाह करके स्वदार संतोष व्रत के अनुसार संयमित जीवन जीता है। परन्तु अधिकांश व्यक्ति फ्रायड के मतानुसार, चार्वाक के अनुयायी बनकर असंयमित, अश्लील, निर्लज्ज बनकर कामुकता से फैशन–व्यसन, दिखावा, आकर्षण–विकर्षण, हत्या–आत्म हत्या करते हैं T. v. सिनेमा, पत्र–पत्रिका, गाना, बजाना, नृत्य, कवि सम्मेलन तथा यहाँ तक कि धार्मिक आयोजन, शैक्षणिक, राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी असंयमित कामुकता का प्रयोग होता है।

अध्याय–4

अब्रह्मचर्य की प्रतिक्रिया है–प्रदूषण से लेकर महाप्रलय (भविष्य की पृथ्वी एवं भारत का पूर्वानुमान)

भारतीय आध्यात्मिक महावैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात, प्रचार–प्रसारित एवं स्थापित सत्य–तथ्य कालजयी, सार्वभौम, सत्यं–शिवं–सुन्दरम्, विश्वकल्याणकारी, नित्यनूतन–नित्य प्राचीन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक है–यह सोचते सोचते उनके ज्ञान–वैभव, सर्वजीव हितकारी वचन व्यवहार के प्रति मेरे तन–मन–वचन स्वतः विनम्रता से आकर्षित हो जाते हैं। जिस प्रकार कि ब्लेक होल से ग्रह–नक्षत्र–प्रकाश तक आकर्षित हो जाते हैं। इस के साथ–साथ आधुनिक ऋषि तुल्य (ऋषयः मंत्र द्रष्टारः) सनम्र सत्य शोधक वैज्ञानिकों के सत्योपासना,सतत पुरुषार्थरूपी तपस्या, विश्वकल्याणकारी ज्ञानरूपी महायज्ञ, वैज्ञानिक ज्ञानोपकरण तथा शोध बुद्धिरूपी ज्योति से जो प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान पुनः जाग्रत, ऊर्जस्वित, क्रियाशील एवं प्रकाशित हो रहा है–इससे हमें प्रेरणा, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन, सम्बल, उद्धरण आदि प्राप्त हो रहे हैं कि जब विदेशी वैज्ञानिक स्वपुरुषार्थ से भारतीय ज्ञान–विज्ञान के समीप शनैः शनैः आ रहे हैं तब हमें हमारे महान् पूर्वोजों के ज्ञान–विज्ञान की धरोहर का परिज्ञान करके स्व–पर–विश्वकल्याण के लिए अनिवार्य रूप से पुरुषार्थ करना है। संदर्भानुसार अब्रह्मचर्य, जो धार्मिक दृष्टि से विशेषतः आत्मकेन्द्रित है, उसे व्यापक दृष्टि से अर्थात् हिंसा, जनसंख्या वृद्धि, अस्वास्थ्य, सामाजिक अव्यवस्था, पर्यावरणीय समस्या आदि की दृष्टि से संक्षिप्त से निम्न में प्रकाश डाल रहा हूँ। विशेष जिज्ञासु मेरी (आ. कनकनन्दी) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य, अहिंसा के विश्वरूप आदि कृति में अध्ययन करें।

1) अब्रह्म से भाव द्रव्य एवं हिंसा– कामुक प्रवृत्ति से भाव में राग–द्वेष, आकर्षण–विकर्षण, चंचलता, तनाव, संक्लेश, आवेग, चिन्ता, डर, उत्तेजना, मोह, अविवेक आदि भाव होते हैं जो कि भाव–हिंसा स्वरूप हैं। इन सब भावों या इनमें से कुछ भावों की अधिकता के कारण पर हत्या के साथ–साथ आत्महत्या भी होती है।

मेहुण सण्णारूढो मारई णवलक्ख सुहूम जीवांई।
इय जिणवरेहिं, भणियं वज्झंतर णिग्गंथ रूवेहि।। भाव संग्रह, जैन ग्रन्थ

मैथुन संज्ञा से (काम चेतना से) उत्तेजित होकर जब मनुष्य भोग करता है, तब वह नौ लाख (900000) जीवों को मारता है, ऐसा अन्तरंग बहिरंग बन्धनों से रहित जिनेन्द्र देव ने कहा है। (कोई–कोई बताते हैं 9 लाख कोटि जीव मरते हैं) (900000,0000000 जीव)। मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि 25 बिन्दु वीर्य में 60 मिलियन (6 करोड) से 110 मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। माता का रज एसिड (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य एल्केलाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संभोग में रज एवं वीर्य के संयोग होने पर एसिड़ एवं एल्केलाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रतिक्रिया होती हैं, उससे उन जीवों का संहार हो जाता है।

(2) अब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य हानि– अब्रह्मचर्य के निमित्त उत्पन्न राग–द्वेषादि के कारण अनेक शारीरिक मानसिक रोग के साथ–साथ अति मैथुन, वैश्यागमन आदि से ओजक्षय, / एड्सरोग, सुजाक, गरमी रोग आदि होते हैं। एड्स रोग का उपचार बचाव है, इसकी औषधि का तो आविष्कार अभी तक नहीं हो पाया है।

3) अब्रह्मचर्य से सामाजिक अव्यवस्था– अब्रह्मचर्य से अर्थात् यौन–उत्श्रृंखलता के कारण अनैतिक, अमर्यादित, व्यवहार होता है जिससे अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक आदि अव्यवस्था, समस्यायें उत्पन्न होती है। यथा– बलात्कार, यौन शोषण, अश्लीलता, उत्श्रंखलता, फैशन, व्यसन, परस्त्रीगमन, वैश्यागमन, नाबालिक सम्बन्ध, अमेल सम्बन्ध, अनैतिक सम्बन्ध आदि। इससे गर्भपात से लेकर कलह, हत्या, मुकदमा आदि समस्यायें भी उत्पन्न होती हैं।

4) अब्रह्मचर्य से जनसंख्या वृद्धि– अब्रह्मचर्य से केवल भारत में ही 1 मिनट में 30 बच्चे, 1घण्टे में 1800, 1दिन में 43200, 1 महिने में 1296000, 1वर्ष में 16037000 बच्चे जन्म लेते हैं। अभी (6–6–07 रात 8.30 बजे भारत की जनसख्या 1105267080 है, इस क्रम से जनसंख्या वृद्धि होने पर 2050 तक भारत की जनसंख्या 1.62 अरब होगी और चीन की 1.46 अरब, यूएस की 39.76 करोड और पृथ्वी की 9.30 अरब होगी। अभी पृथ्वी की आबादी प्रायः 6.7 अरब है। इन जनसंख्या के कारण निम्नोक्त समस्यायें होती हैं और होगी।

A जनसंख्या के कारण पृथ्वी की समस्यायें–(अभी)

I 25 करोड 30लाख युवक अर्थात् 1 / 6 गरीब हैं।

II सडकों पर जीवन बिताने वाले बच्चों की संख्या प्रायः 12 से 25 करोड।

III विकासशील देशों में 15 से 24 वर्षों की आयु के 7 करोड 89 लाख युवक और 13 करोड 65 लाख युवतियाँ शिक्षा से पूर्ण वंचित हैं।

IV आधी जनसंख्या गन्दगी और कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन से पीडित हैं।

V सही इलाज के अभाव से प्रति वर्ष 5 लाख स्त्रियाँ प्रसूति के समय मरती हैं।

VI 9.4% कर्जदार बढे हैं और हजारों कर्जदार किसानों ने फसल के असफल होने के कारण आत्महत्या की है।

VII प्रायः डेढ अरब टेलिफोन हैं जबकि आधी आबादी को फोन करना नहीं आता है।

B 2050 की पृथ्वी की समस्यायें–

I 82. अरब 50 करोड नए घरों की आवश्यकता होगी किन्तु इतनी जमीन नहीं बच पायेगी।

II 1 अरब 17 करोड वाहनों की आवश्यकता होगी परन्तु उन्हें चलाने के लिए इतनी सडक कहाँ से आयेगी ?

III प्रतिवर्ष 23 अरब 76 करोड लीटर पानी लगेगा परन्तु जनसंख्या एवं ग्लोबल वार्मिंग के कारण इस आवश्यता की पूति नहीं होगी।

IV 5028 अरब टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी किन्तु उस समय की परिस्थिति में यह संभव नहीं है।

V 2 करोड 60 लाख लोग अलजाइमर रोग से ग्रसित होगें। प्रत्येक 17 में से एक व्यक्ति की मृत्यु मस्तिक सम्बन्धी रोग से होगी।

VI 1.64 अरब मीटर कपडे की आवश्यकता होगी किन्तु घटते कपास उत्पादन आदि से समस्या उत्पन्न होगी।

VII आर्थिक असमानताओं और गरीबी में वृद्धि आदि से प्रति वर्ष 33. 71 करोड अपराध होंगे।

VIII वर्तमान में जो 5 करोड 70 लाख एड्स रोगी हैं उनकी संख्या 50 करोड को पार कर जायेगी।

2050 तक भारत की समस्यायें–

I 24 करोड जनता को भूखे पेट सोना पडेगा क्योंकि तब 3.50 करोड टन प्रति वर्ष खाद्यान्न की आवश्यकता होगी जो कि उस समय असंभव होगा।

II बेरोजगारी बडी समस्या होगी।

III पानी, मकान, कपडा, यातायात आदि की भी बडी समस्या होगी।

IV नदियाँ प्रदूषित होगी, जंगल कटते जायेंगे, वर्षा की समस्या होगी। (यूनएन सहस्राब्दी रिपोर्ट)

भारत का भू भाग पृथ्वी के भू–भाग का 2.4% है तथापि वैश्विक जैव विविधता में भारत की भागीदारी 8% है। भारत में वनस्पतियों की 37 हजार से ज्यादा प्रजातियाँ, जन्तुओं की 89 हजार से अधिक प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है। कृषि वनस्पतियाँ में 167 फसल प्रजाति 350 वन प्रजातियाँ, चावल (धान) की 30–50 हजार, ज्वार–बाजरे की 5 हजार, काली मिर्च की 5 सौ से ज्यादा प्रजातियाँ हैं। यहाँ के राष्ट्रीय वन उद्यान और वन अभयारण्य का क्षेत्रफल 112274 वर्ग किलोमीटर है। देश की 60–70 % आबादी की जीविका कृषि है और सब का भरण–पोषण का आधार यही सब है। आबादी, रोड, फैक्ट्री आदि के कारण अब तक भारत के 40 % से ज्यादा वन क्षेत्र नष्ट हो चुका है। आनुवांशिक छेड–छाड, हायब्रिड किस्मों का प्रयोग, कीटनाशक और रासायनिक उर्वरकों से जमीन उत्तरोत्तर बंजर होती जा रही है, प्राकृतिक जैव विविधता नष्ट हो रही है एवं अनाज–फल–सब्जी आदि की गुणवत्ता, मधुरता, पौष्टिकता आदि कम होती जा रही है। आनुवांशिक विविधता से जीवों की वंश परम्परा सुरक्षित रहती है और इस कमी से वंश परम्परा की सुरक्षा में कमी आ जाती है।

पृथ्वी महाप्रलय की ओर वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, जीवविज्ञानियों तथा धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार पृथ्वी धीरे–धीरे महाप्रलय की ओर जा रहा है जिसके संकेत हैं, पूरी पृथ्वी में मौसम में उथल, पुथल, सुनामी, तूफान, सूखा, हिमपात आदि। विज्ञानानुसार अभी तक पृथ्वी पर 5 बार प्रलय आ चुके हैं। आगामी 6 वें महाप्रलय के लिए वैज्ञानिक बढती जनसंख्या और मनुष्यों के कार्यकलापों को दोषी मानते हैं। वृक्षों की कटाई,

वातावरण में जहरीली गैसें छोडना, जल प्रदूषण, हिंसा, पर्यावरण शोषण आदि इस प्रकार महाप्रलयों को न्योता दे रहे हैं।

विज्ञानानुसार एक जीव प्रजाति के विनाश के कारण उसके आनुसांगिक और भी 32 जीव प्रजातियाँ नष्ट हो जाती हैं। वर्षावन की आधी जीव प्रजातियाँ नष्ट हो गयी हैं जो कि डायनासोर की विलुप्ति से भी खतरनाक है और मनुष्य कृत 6 वें प्रलय का प्रारम्भ है। (1) बाढ (2) अकाल (अतिवृष्टि, अनावृष्टि) (3) भूकम्प (4) ज्वालामुखी विस्फोट (5) वनदाह (वनाग्निदाह) (6) बवण्डर (7) वज्रपात मुख्यतः 6 वें महाप्रलय के लिए मुख्य कारण बनेंगे। प्रो. हॉकिंग के अनुसार परमाणु युद्ध, ग्लोबल वार्मिंग और जैव इंजीनियरिंग की तकनीक से तैयार वायरस के फैलने जैसी आपदाओं से जीवन के हमेशा के लिए समूल नष्ट होने का खतरा लगातार बढता जा रहा है। इस के अलावा ऐसी विभीषिकाएँ भी आ सकती हैं, जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते हैं।

निवारण उपाय

1) ब्रह्मचर्य महाव्रत या अणुव्रत पालन करके जनसंख्या का नियंत्रण करना। फैशन–व्यसन–कामुकता तथा उसके कारणभूत सिनेमा, T.V. आदि कार्यक्रमों पर नियंत्रण।

2) अपरिग्रह महाव्रत या अणुव्रत के माध्यम से तृष्णा, लालसा को नियंत्रण करके प्राकृतिक शोषण, विनाश को कम करना। माता के दुग्धपान और उसके स्नेह, सुरक्षा, संवर्द्धन के समान प्रकृति के साथ व्यवहार करना चाहिए न कि एक डाकू के समान।

3) "सादा जीवन उच्च विचार" "जीओ और जीने दो" प्राकृतिक–जीवन, अहिंसा से प्रकृति–जीव–जन्तुओं के संरक्षण, संवर्द्धन, अहिंसक प्रकृतिक कृषि, कुटीर उद्योग से प्रदूषणकारी हिंसक उद्योग–फैक्ट्री से मुक्त होना, स्वावलम्बन–शारीरिक श्रम से प्रदूषण तथा हिंसाकारक यान–वाहन से मुक्त होना।

4)" जीव जीवस्य भक्षणम्" के परिर्तन में "जीव जीवस्य रक्षणम्" "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" को अपनाना अनिवार्य है। भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति तथा पाश्चात्य पर्यावरण सुरक्षा के उपाय संक्षिप्ततः उपर्युक्त समस्याओं के समाधान उपाय है।

अध्याय–5

उपवास का स्वरूप एवं लाभ–हानि (धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से)

प्रायः प्रत्येक धर्म, जाति, देश में चिकित्सा प्रणाली में उपवास की परम्परा है और उसके महत्व को स्वीकार किया है। उपवास का अर्थ न केवल भोजन त्याग करना है, न केवल स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपयोगी है परन्तु भोजन के साथ–साथ क्रोधादि भाव, तनाव, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, आरम्भ, परिग्रहादि त्याग करके आत्म–चिन्तन, तत्त्व–चिन्तन, धर्म–ध्यान करने से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रोग दूर होते हैं। परन्तु वर्तमान में जो उपवास की प्रणाली है, उसमें अनेक भ्रान्तियाँ, अनेक त्रुटियाँ एवं रूढियाँ हैं। जिससे उपवास से तो कम व्यक्तियों को कम लाभ होता है परन्तु अधिकांश व्यक्तियों को अधिकांशतः हानि ही होती है। इसलिए मैंने विभिन्न आयुर्वेद, प्राकृतिक–चिकित्सा विज्ञान धर्म शास्त्रों का अध्ययन करके एवं अनुभव से यह शोध लेख लिखा है।

स्व–शक्ति, आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार उपवास की अवधि एवं उसका बाह्य आवलम्बन अलग–अलग होते हुए भी उपवास का उद्देश्य या फल एक ही है जो कि भाव की विशुद्धता है। इस भाव विशुद्धता से ही पाप का संवर तथा निर्जरा होती है, जिससे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की उपलब्धि होती है। भाव विशुद्धि के बिना केवल आहार त्याग करने से आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य की उपलब्धि तो दूर है परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य की भी प्राप्ति नहीं होती है, अपितु हानि भी होती है।

उपवास की अवधि में धार्मिक कार्य यथा–पूजा, अभिषेक, आहार दान, स्वाध्याय, ध्यान, तप, जपादि करना चाहिये परन्तु सांसारिक कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। दान, पूजादि के लिए भाव शुद्धि के साथ–साथ शारीरिक शुद्धि भी चाहिए। शारीरिक शुद्धि के लिए प्रासुक शुद्ध जल का प्रयोग करना चाहिए। मुख–शुद्धि भी शारीरिक शुद्धि के अन्तर्गत है। इसलिए मुख–शुद्धि भी करना चाहिए परन्तु मुनि, आर्यिका, क्षुल्लिकादि उपवास के दिन मुख शुद्धि नहीं कर सकते हैं। हाँ, यदि कोई गृहस्थ–उपवासी समस्त संकल्प–विकल्प और आरम्भ, परिग्रह को त्याग करके एकान्त में तप–ध्यान में लीन रहता है तो वह बाह्य पूजा, दानादि नहीं कर सकता इसलिए उसे स्नान, मुख–शुद्धि की भी आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि ऐसा नहीं करता है और शरीर, मुख–शुद्धि करके आहारदान, पूजादि नहीं करता है तो उसका उपवास भी यथार्थ नहीं है। उपवास के समय में आहार दान के लिए, पूजा के लिए तो श्रावक पानी लाना, खाना पकाना, मन्दिर तथा चौका की शुद्धि करना, चौका एवं मन्दिर के बर्तन साफ करना आदि कार्य कर सकता है परन्तु गृह सम्बन्धी, आरंभ, परिग्रह सम्बन्धी कार्य यथा–कपडा धोना, झाडू लगाना, आग जलाना, व्यापार करना, खाना पकाना, अश्लील सिनेमा, टी. वी. देखना, ताश खेलना, गप्प लगाना, शरीर को श्रृंगारित करना आदि नहीं करना चाहिए। उपवास के समय अधिक से अधिक धार्मिक कार्यों को अप्रमादी होकर करना चाहिए। उपवास की अवधि में रात्रि को अधिक शयन करने का भी निषेध है। परन्तु अभी देखने में आता है कि अधिक उपवास के समय में रात की तो बात छोडो, दिन को भी लेटे (शयन) रहते हैं, गप्प लगाते हैं, गृहकार्य भी करते हैं। यहाँ तक कि कुछ व्यक्ति तो ताश तक खेलते हैं किन्तु ऐसे व्यक्ति भी दान,

पूजादि के लिए मुख–शुद्धि के निमित्त, मुख में पानी डालने को उपवास भंग मानते हैं। यह तो एक प्रकार से लकीर के फकीर बनना है।

स्वशक्ति के अनुसार भोजन के साथ–साथ विषय, कषाय, आरंभ, परिग्रह को त्याग कर ज्ञान, ध्यान, तप के द्वारा आत्मा के पास उपवेशन करना, स्थिर रहना, उपवास है। इसलिए भोजन त्याग को जितना महत्व है उससे भी अधिक महत्व विषय, कषायादि के त्याग के माध्यम से आत्मा के पास पहुँचना, धर्मध्यान करना है। यदि अधिक उपवास करने से शरीर, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं जिससे धार्मिक कर्तव्यों का निरतिचार पालन नहीं होता है तो अधिक उपवास न करके शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए, जिससे शरीरादि धार्मिक कार्य करने के लिए अधिक सक्रिय एवं समर्थ बने क्योंकि आहार त्याग का मुख्य उद्देश्य है विशेष धर्मध्यान करना। यदि धर्मध्यान उपवास में नहीं होता है तो वह उपवास उद्देश्य एवं फलहीन हो जाता हश्ै और शरीर इन्द्रियाँ एवं स्मरण शक्ति भी शिथिल हो जाती है, ऐसी परिस्थिति में योग्य सात्त्विक आहार करके धर्मध्यान में लगे रहना अधिक श्रेयस्कर है।

सम्यक् उपवास का, बहुआयामी उद्देश्य, फल एवं उपयोगिता है। हर समय भोजन करने से पाचन तंत्र को भोजन पचाने में ही सतत कार्य करना पडता है, जिससे उसे विश्राम के लिए अवसर नहीं मिलता है, इसके कारण पाचन तंत्र दुर्बल एवं अस्वस्थ हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप अपच, अग्निमांद्य, गैसट्रबल, पेटदर्द, पेटफूलना, कब्जियत आदि अनेक रोग उत्पन्न होकर और भी अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं। यथा–स्मरण शक्ति की कमी, मन्द बुद्धि, आलस्य, मोटापा, खट्टी डकार, छाती में दर्द, वातरोग आदि–आदि।

भोजन पचाने के लिए पाचन तंत्र को सक्रिय होना पडता है, जिसके लिए उसे शक्ति की आवश्यकता पडती है, उस शक्ति की आपूर्ति के लिए रक्त का बहाव पाचन तंत्र की ओर अधिक होता है। इसलिए भोजन के बाद क्लिष्ट विषयों का अध्ययन एवं कठिन कार्य करने के लिए निषेध किया गया है। इसलिए जो अधिक, बार–बार भोजन करता है, वह शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ रहता है एवं मन्द बुद्धि वाला होता है क्योंकि मस्तिष्क की तरफ का रक्त भी पाचन तंत्र में अधिक चला जाता है, जिससे मस्तिष्क दुर्बल हो जाता है एवं बुद्धि कम हो जाती है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि अधिक भोजन करने से आयु भी कम हो जाती है क्योंकि भोजन को पचाने में अधिक शक्ति खर्च हो जाती है जिससे आयु कम हो जाती है। इसलिए आयु के लिए पौष्टिक आहार करना चाहिए परन्तु बार–बार भोजन नहीं करना चाहिए। पौष्टिक सात्विकाहार से ऊर्जा तो मिलती है परन्तु बार–बार भोजन पचाने में जो शक्ति की क्षति होती है, वह नहीं होती है जिससे आयु बढती है

तप की उत्तरोत्तर प्रकृष्टता उपवास से प्रारम्भ होकर ध्यान में समाप्त होती है। परन्तु पंचम काल की अपेक्षा 'स्वाध्यायः परम तप' है। क्योंकि इस काल में उत्तम संहननादि के अभाव से उत्तम ध्यान नहीं हो सकता है। भगवती आराधना, अनगार धर्मामृतादि ग्रन्थ में कहा गया है कि–

शमयत्युपवासोत्थवातपित्तकोपजाः।
रूजो मिताशी रोचिष्णु ब्रह्मवर्चसमश्नुते।।25

उपवास के द्वारा वात–पित्त कुपित हो जाने से उत्पन्न हुए रोग अल्पहार से शान्त हो जाते हैं तथा परिमितभोजी प्रकाशस्वभाव तेज को अथवा श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।

धर्मावश्यक योगेषु ज्ञानादावुपकारकृत्।
दर्पहारीन्द्रियाणां च ज्ञेयमूनोदरं तपः।।22

'यह ऊनोदर (कम भोजन)तप धर्म, आवश्यक कर्तव्य, ध्यान और ज्ञानादि की प्राप्ति में उपकारी होता है तथा इन्द्रियों के मद को दूर करता है।'

मनुष्य जीवन एवं मनुष्य शरीर का सदुपयोग आत्म कल्याण में है तथा इसका दुरुपयोग, निहित स्वार्थ सिद्धि में लगाने में एवं भोग विलास में लगाने में है। इस आत्म कल्याण के लिए भोजन किया जाता है। अधम श्रेणी के व्यक्ति, खाने के लिए जीते हैं, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति जीने के लिए खाते हैं एवं उत्तम श्रेणी के व्यक्ति ऐसा भोजन करते हैं जो धर्म साधन के लिए साधक बने, न कि बाधक बने। कहा भी है–

वशे यशास्युरक्षाणि नोत धावन्त्यनूत्पथम्।
तथा प्रयतितव्यं स्याद्वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम्। क्षेपक (अ. ध. श्लोक9 पृ.495)

आगम में कहा है कि शरीर रत्नत्रयरूपी धर्म का मुख्य कारण है। इसलिए भोजन पान आदि के द्वारा इस शरीर की स्थिति के लिए इस प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्रियाँ वश में रहें और अनादिकाल से सम्बद्ध तृष्णा के वशीभूत होकर कुमार्ग की ओर न ले जावें।

यदाहारमयो जीवस्तदाहारविराधितः।
नार्तरौद्रातुरो ज्ञाने रमते न संयमे।। 16 पृ. 499

यतः प्राणी आहारमय है अर्थात् मानो आहार से ही बना है। इसलिए आहार छुडा देने पर उसे आर्त्त और रौद्रध्यान सताते हैं। अतः उसका मन न ज्ञान में लगता है, न संयम में लगता है।

प्रसिद्धमन्नं वै प्राणा नृणां तत्त्याजितो हठात्।
नरो न रमते ज्ञानि दुर्ध्यानार्तो न संयमे।। 17

मनुष्य का प्राण अन्न है यह कहावत प्रसिद्ध है। जबरदस्ती उस अन्न को छुडा देने पर खोटे ध्यान में आसक्त मनुष्य न ज्ञान में ही मन लगाता है और न संयम में मन लगाता है।

उपरोक्त श्लोक में लेखक ने अनुभवजन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। नीति वाक्य में भी कहा है–

भूखे भजन न होय गोपाला, लेलो अपनी कण्ठी माला।

प्राचीन वाक्य में भी कहा है–

बुभुक्षुः किम् न करोति पापम्।

अर्थात्–भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता अर्थात् वह सब तरह के पाप कर सकता है।

शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के अनुसार जब पर्याप्त भोजन नहीं मिलता है, तब शरीर में अनेक तत्त्वों की कमी हो जाती है, जिस के कारण मनुष्य के शरीर में एवं मन में विभिन्न प्रतिक्रियाएँ होती है एवं दुर्बलताएँ जन्म ले लेती है। ज्ञान तन्तु प्रभावित हो जाते हैं। कार्य क्षमता, वैचारिक शक्ति, सहनशीलता कम हो जाती है जिसके कारण जीव चिडचिडा, कमजोर, अन्यमनस्क हो जाता है। इसलिए लोकोक्ति है–

"कम कुव्वत गुस्सा तेज"।

सुनने एवं पढने में आता है जब कुतियाँ, सर्पिणी आदि कुछ माता सन्तान को जन्म देती है तब वह भूख के कारण स्व संतान को ही खा जाती है। मैंने कुछ किताबों में अध्ययन किया है कि दुर्भिक्ष के समय में मनुष्य भी मरे हुए मनुष्य को खा लेते हैं, माँ भी मरे हुए बच्चे को खा जाती है। यहाँ तक कि मनुष्य भी जीवित मनुष्य को खा लेता है।

अति उपवास से हानि– मस्तिष्क– के फंक्शन धीमे हो जाते हैं। व्यक्ति कम सजकता महसूस करता है और उनींदा हो जाता है तथा ऊंघने लगता है। **आँखे–** अन्दर धंसने लगती हैं। **हड्डियाँ–** हड्डियों का मसल मांस (घनत्व) कम होने लगता है। नष्ट हो जाता है। **छाती–** छाती में लगातार दबाव/संकुचन होता है। सांस लेने में दिक्कत। **हृदय–** हार्ट रेट बढ जाती है। **लीवर–** लीवर में एंजाइमों की मात्रा बढ जाती है और हल्का पीलिया हो जाता है। **किडनी:** किडनी से पेशाब का उत्सर्जन कम हो जाता है। **पैक्रियाज–** अग्न्याशय (पैक्रियाज) में एंजाइम बढ जाते हैं। **उदर:** ज्यों–ज्यों दिन गुजरते है पेट में पानी भरने से पेट फूलता जाता है। **ब्लड प्रेश–** ब्लड प्रेशर गिर जाता है और व्यक्ति ब्लड प्रेशर (हाइफरटेंशन) का शिकार हो जाता है। शरीर में जल तत्त्व घट जाने से रक्त के प्रवाह में बाधा पहुँचती है, इससे हृदय पर जोर पडता है। हाथ–पैर नीले हो जाने की नौबत आ सकती है। न केवल चेहरे पर, बल्कि शरीर में कहीं भी झुर्रियां उभर सकती हैं। ब्लड प्रेशर में कमी आने से धडकनें अनिमियत होने और बेहोशी छा जाने का खतरा बढ जाता है। बेहोशी का एक और कारण है, रक्त में शक्कर की कमी जो अनापशनाप डायटिंग के अनेक नतीजों में से एक है। हाथ–पैरों के ऊपरी हिस्से की मांस पेशियां घट जाती है हृदय की मांस पेशियां भी घटती हैं और कोलेस्ट्रॉल बढता है, इससे दिल के दौरे को खुला आमंत्रण मिल जाता है। मस्तिष्क में 'सेरोटोनीन' नामक एक नैसर्गिक हारमोन तैयार हो जाता है, जो मूड का कन्ट्रोलर है। डायटिंग के अतिरेक से आप के शरीर में 'सेरोटोनीन' घट जाता है, जिससे हताशा का आक्रमण हो सकता है। नये शोध के अनुसार ज्ञात हुआ कि पके हुए केले के छिलके या उसके सूप के सेवन से सेटोटोनीन की पर्याप्त मात्रा पहुँचकर मस्तिष्क को नियन्त्रित रखने में सहायक हो जाता है।

नाक्षाणिप्रद्विषन्त्यन्नप्रतिक्षयभयान्नच।

दर्पात् स्वैरं चरन्त्याज्ञामेवानूद्यन्ति भृत्यवत्।। 24 अ. धर्मामृत, पृ. 503

अल्प आहार से इन्द्रियाँ मानों उपवास से इन्द्रियों का क्षय न हो जाये, इस भय से अनुकूल रहती हैं और मद के आवेश में स्वच्छन्द नहीं होती किन्तु सेवक की तरह आज्ञानुसार चलती हैं।

4) मोक्ष पुरुषार्थ–

जो कि उपर्युक्त तीनों पुरुषार्थ से सर्वोच्च उपाय है उस में भी प्रायः सामान्य धर्मावलम्बी से लेकर साधु–संत तक संकीर्ण, धर्मान्ध, कट्टर पंथ–मत, पूजा–पाठ, रीति–रिवाज, अनुपयोगी बाह्य क्रियाकाण्ड में लिप्त रहते हैं तथा अन्य से भेद–भाव, ईर्ष्या–घृणादि करते हैं, उन्हें नीचा दिखाने में तथा स्वयं को सच्चा, अच्छा–उच्च सिद्ध करने में विभिन्न अयोग्य उपायों का आलम्बन लेते हैं। वे परलोक सुख के बहाने से स्व–पर को पीडा पहुँचाते हैं। जब वर्तमान के साधनएवं कार्य पीड़ा कारक हैं तब भविष्य के– परलोक के साध्य एवं कार्य कैसे सुखकर हो सकता है ? कदापि नही परन्तु संकीर्ण–कठोर, धर्मान्ध, सकीर्ण स्वार्थी यह सब न जानता है, न मानता है न अपनाता है।

अध्याय-6

प्रतिभावान् बनने हेतु इसे जाने–माने–अपनाये !

सर्वोदय शिक्षा के विविध आयाम

जिस प्रतिभा के कारण मनुष्य नर से नारायण, मानव से भगवान्, बुद्धु से बुद्ध, वन मनुष्य से वैज्ञानिक बनता है तथा ज्ञान–विज्ञान, सभ्यता–संस्कृति, कला–साहित्य, आत्म–उन्नति से लेकर विश्व–शान्ति के लिए समर्थ बनता है ऐसी महिमामयी प्रतिभा ही मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, सर्व ज्येष्ठ उपलब्धि है। इतना ही नहीं, अपितु जीवन के हर विचार, उच्चार, व्यवहार, आहार, विहार, निर्णय, कार्य आदि में प्रतिभा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। ऐसी प्रतिभा की आवश्यकता एवं उपयोगिता तो हर काल में हर क्षेत्र में रहती है परन्तु वर्तमान के वैश्विक वैज्ञानिक ज्ञानात्मक युग में इस की आवश्यकता एवं उपयोगिता सर्वत्र उत्तरोत्तर बढती जा रही है। इन सब कारणों को लक्ष्यगत करके मैंने "सर्वोदय शिक्षा–मनोविज्ञान" "शिक्षा–संस्कृति एवं नारी गरिमा" आदि पुस्तक एवं अनेक शोधपूर्ण लेखों की रचनाएँ की हैं परन्तु पढाई के बोझ से दबे हुए, कृत्रिम जीवन जीने में अभिशप्त, तनाव से जकडे–अकडे हुए विद्यार्थीगण जो कि इसके कुफलस्वरूप न केवल पढाई की परीक्षा में फेल होते हैं किन्तु बेकारी, अकर्मण्यता, आलस्य, फैशन–व्यसन, दिखावा, अहंकार, हीन भावना, अनम्रता, उश्रृंखलता, दुष्टता, दुर्जनता, भ्रष्टाचार से लेकर पर हत्या–आत्महत्या करके जीवन की परीक्षा में फेल हो रहे हैं; विशेषतः उन्हें लक्ष्य में रखकर यह लघु लेख लिख रहा हूँ।

याद के प्रतिशत

25% पढने से, 35% सुनने से, 50% देखने से, 60% चर्चा से, 70% लिखने से, 75% करने से, 95% पढने, सुनने, देखने, चर्चा, लेखन करने से, 100% पढने, सुनने, देखने, चर्चा, लेखन, करने एवं अनुभव से, याद रहता है। याद रखने के प्रयत्न/उत्कण्ठा से तात्कालिक स्मृति में 20% और दीर्घकालिक स्मृति में 60% उन्नति होती है।

प्रतिभा के विभिन्न आयाम

योग्यता, महान् उद्देश्य, अभिरुचि, उत्साह, एकाग्रता, पुरुषार्थ, अधिगम, स्मरण, निर्णय, कल्पना, सहानुभूति, मौलिकता, शोध, प्रयोग, शान्ति, प्रोत्साहन एवं योग्य वातावरण आदि प्रतिभा के विभिन्न आयाम हैं।

योग्यता से सम्पन्न महान् उद्देश्य को लक्ष्य करके शिक्षा ग्रहण करके पुरुषार्थ करने वाले ही प्रतिभावान् बनते हैं अन्यथा छोटा एवं खोटा उद्देश्य से प्रतिभा भी छोटी एवं खोटी होगी क्योंकि आवश्यकता के अनुसार प्रतिभा का आविष्कार होता है। केवल डॉक्टर, वकील, जज, शिक्षक आदि बनकर धन कमाने का क्षुद्र लक्ष्य रखने वाला महान् प्रतिभाशाली नहीं बन सकता है। डॉक्टर बनकर परोपकार करने के उद्देश्य वाला महान् बनेगा, धन, मान, सम्मान, स्नेह, संतुष्टि प्राप्त करेगा। महान् उद्देश्य से

अभिरुचि, उत्साह, एकाग्रता, पुरुषार्थ भी महान् होता है। तीर्थंकर, बुद्ध, वैज्ञानिक, समाज सुधारक, राष्ट्रभक्त, दार्शनिक, लेखक आदि उपर्युक्त गुणों के कारण ही महान् बनते हैं। उपर्युक्त कारणों से उनके ज्ञान (अधिगम) स्मरण, कल्पना, सहानुभूति, मौलिकता, शोध, प्रयोग, शान्ति, सफलता, विकास श्रेष्ठ–ज्येष्ठ होते हैं।

(1) किसी भी विषय को सीखना, याद करना आदि का जो गणित ऊपर दिया गया है उसे जीवन में प्रत्येक समय, प्रत्येक विषय में प्रयोग में रुचिपूर्वक, एकाग्रता से समग्रता से लाएँ। अरुचिपूर्वक, अन्यमनष्क होकर रटन्त रूप से या अपूर्ण रूप से याद करने से विषय समझने में नहीं आता है, स्मरण में नहीं आता है, कार्य रूप में व्यवहार में प्रयोग में नहीं आ सकता है। जिस प्रकार भोजन पचने से रसादि बनते हैं, उसी प्रकार वाचन (पढना, सुननादि) पाचन (समझ) से स्मरण, कार्यान्वयन रूप से परिणमन करता है। जैसा कि अपरिपक्व बीज योग्य वृक्ष बनकर फूल–फल नहीं प्रदान कर सकता है, वैसा ही अपरिपक्व शरीर–मन वाले शिशु (2–3 वर्ष) पढाई के तनाव के माध्यम से प्रतिभावान् नहीं बन सकते हैं। योग्य बीजयोग्य वातावरण, मृदा, खाद, पानी, सूर्य किरण से जिस प्रकार वृक्ष बनकर फूल–फल प्रदान करता है उसी प्रकार प्रतिभावान् बनने के लिए गहन सूक्ष्म–व्यापक अध्ययन, मनन, समीक्षा, समन्वयरूप ज्ञान, अनुसन्धान, व्यायाम, शारीरिक श्रम, योगासन, प्राणायाम, ध्यान, शुद्ध–ताजा–पौष्टिक शाकाहार–दुग्धाहार–फलाहार, चर्चा, परिभ्रमण, प्रायोगीकरण, सेवा, परोपकार, सहानुभूति, नवीन कल्पना, रचनात्मक सोच, सादा–सरल–सहज–तनावमुक्त जीवन, उत्साह, पुरुषार्थ, प्रोत्साहन, सहयोग आदि चाहिए। इससे शारीरिक–मानसिक आध्यात्मिक–स्वास्थ्य प्राप्त होने के साथ–साथ उन में विकास होता है। (2) किसी भी विषय को सीखते समय यथायोग्य पांचों इन्द्रिय तथा मन से भी सीखें। यह प्रवृत्ति केवल पढने में नहीं किन्तु खाना–पीना–चलना–चर्चा–व्यवहार आदि में करने से इन्द्रिय–मन सर्तक रहते हैं, सक्रिय रहते हैं, दक्ष एवं ग्राही बनते हैं जिससे सीखने की क्रिया सरल–व्यापक होती है, स्मरण रहता है। एक इन्द्रिय के द्वारा अन्य इन्द्रियों के विषय भी अनुभव या अनुमान से जानने की क्षमता विकसित होती है। (3) विभिन्न शब्द–भाषा एवं विषयों के ज्ञान से प्रतिभा प्रखर होती है क्योंकि इससे मस्तिष्क–कोशिकाओं का सम्बन्ध दृढ होता है जिससे याददाश्त बढती है।

(4) व्यायाम, शारीरिक श्रम से दिमाग में रक्त का प्रवाह बढता है जिससे याददाश्त बढती है। (5) गहरी नीदं, तनाव रहित शान्त–एकाग्रमन, ध्यान, योगासन, प्राणायाम, धूम्रपान–शराब–मांस–मछली–अण्डा–त्याग, फैशन–व्यसन–आडम्बररहित जीवन से स्मरण शक्ति बढती है, प्रतिभा प्रखर होती है, जीवन शान्त–सफल–सन्तोषप्रद बनता है।

(6) किसी भी विषय को सीखने, याद रखने के लिए एवं समय पर करने के लिए आवश्यकता एवं प्राथमिकता को लक्ष्य में रखकर कागज पर लिखें जिससे अनावश्यक रूप से आप के मस्तिष्क के ऊपर बोझ नहीं पडेगा, समय पर कार्य होने पर सब कार्य व्यवस्थित होंगे जिससे संतुष्टि, उत्साह, प्रेरणा प्राप्त होगी।

(7) किसी भी विषय को उत्साह, एकाग्रता से सीखने पर शीघ्र समझने में आता है, दीर्घ काल तक याद रहता है इसलिए उसे बार–बार सीखने की आवश्यकता नहीं पडती है, इससे समय, शक्ति, बुद्धि की बचत होती है। उस बचत से नया विषय सीखने में और भी अधिक प्रतिभा प्रखर होती है, बोरियत–हतोत्साह नहीं होता है। इसलिए विद्यार्थियों को उत्साह एवं एकाग्रता से समझते हुए सीखना चाहिए तथा शिक्षकों को भी समझाते हुए, विद्यार्थियों की विभिन्न जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए सहानुभूति से सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक रूप से विद्यालय में ही प्रशिक्षण देना चाहिए जिससे विद्यार्थियों का ट्यूशन, कोचिंग के द्वारा समय, श्रम, धन बुद्धि का शोषण न हो। ट्यूशन, अधिक होमवर्क से छात्रों को विश्राम, खेल, मनोरंजन, घूमना, वार्तालाप, सांस्कृतिक धार्मिक कार्यक्रम, सेवा, सहयोग आदि के लिए पर्याप्त शक्ति, समय नहीं मिलता है जिससे उन्हें विभिन्न प्रायोगिक जानकारी, ज्ञान, अनुभव, स्नेह, सहयोग नहीं मिलता है इससे उसकी प्रतिभा, क्षमता, दक्षता में वृद्धि नहीं होती है, सर्वांगीण विकास नहीं होता है तथा वह स्कूली पढाई में भी पिछडा हो जाता है।

(8) लक्ष्य निर्धरित करने से दिमाग इसे अवचेतन रूप से ग्रहण करते हुए महत्वपूर्ण सूचनाएँ रीकाल (स्मरण) करने में सहयोगी बनेगा। इसी प्रकार आत्म विश्वास, कल्पनाशीलता, सहानुभूति, परोपकार, आध्यात्मिकता, महान् कार्य की उत्कंठा आदि से भी प्रतिभा प्रखर होती है।

(9) पढा हुआ, सुना हुआ, देखा हुआ को मनन, चिन्तन परीक्षण–निरीक्षण करने से, स्व समझ के अनुसार लिखने से, चर्चा करने से, प्रयोग करने से भी प्रतिभा प्रखर होती है। (10) इससे योग्यता के अनुसार सीखने से समझ में आता है जिससे आनन्द अनुभव होता है; इससे रुचि बढती है, रुचि से सीखने में मन लगता है, सीखने में तीव्रता एवं गुणवत्ता आती है जिससे प्रतिभा बढती है। (11) अरुचि पूर्वक, निष्क्रिय, अव्यवस्थित, बिना समझे, अप्रयोजन, अयोग्य पढने से, सीखने से, रटन्त से, मानसिक शक्तियों की लचक व तेजी और भी कम हो जाती है, दिमाग दुर्बल तथा सुस्त बनकर सूक्ष्म, गहन, गम्भीर विषयों को समझने के अयोग्य हो जाता है। अतः इन सब से पूर्णतः बचें। जिस प्रकार कि पौष्टिक भोजन के अपच से रस, रक्त, ऊर्जा तो प्राप्त नहीं होते हैं, अपरंच रोग कारक बनता है, शक्ति क्षीण होती है। उसी प्रकार उपर्युक्त अयोग्य शिक्षण से विषय न तो पचता है (समझ, स्मरण) और न पूर्व संचित ज्ञान से जुडता है जिससे ज्ञान में वृद्धि नहीं होती है। इस परिस्थिति में विद्यार्थी, माता–पिता, शिक्षक, शैक्षणिक संस्थान से लेकर सरकार सोचते हैं कि साक्षरता (संस्कार सदाचार, स्वावलम्बन आदि से रहित केवल रटन्त अक्षर की जानकारी) बहुत ही आवश्यक है, महत्वपूर्ण है, गहन है, सूक्ष्म है, क्योंकि इतने परिश्रम करके विद्यालय से लेकर ट्यूशन तक जाने पर एवं छुट्टी में भी पहाड सा होमवर्क देने पर भी किसी प्रकार की प्रतिभा, योग्यता, कार्य कुशलता में वृद्धि नहीं हो रही है तो और भी दबाव डालकर पढाओ जिससे प्रतिभा बढेगी। परन्तु योग्य वैज्ञानिक पद्धति के बिना जितना अधिक से अधिक दबाव डालकर या ढंग के

बिना, ढोंग से पढने से अधिक से अधिक प्रतिभा आदि घटती है। यह सब अनुभवहीन अविवेकी नहीं जानते हैं। जैसा कि अपच, पेचिश रोगी को स्वस्थ–सबल बनाने के लिए जितना अधिक से अधिक पौष्ठिक–गरिष्ट भोजन करायगें तो वह उतना ही अधिक से अधिक रोगी–दुर्बल बनता ही जायेगा, वैसा ही शिक्षा में भी जानना चाहिए। (12) स्मृति (प्रतिभा) को शिक्षित करने के लिए दैनिक जीवन में यथा, सम्भव हर अवसर पर प्रयोग हो और ऐसे साधनों का आसरा न लिया जाये जिससे प्रतिभा आलसी बने। (13) बुरी आदत, बुराई, क्रोध, अहंकार, संकीर्णता, अनुशासन विहीनता, आडम्बर, दिखावा, फैशन–व्यसन, आलस्य, कटुवचन, समय–शक्ति–साधनों का अपव्यय, हठग्राहिता, क्रूरता, अनुदार, रुढिवादिता, नकल, अन्धानुकरण, निन्दा, चुगली, गप्पबाजी आदि से दूर रहना चाहिए क्योंकि इससे शक्ति, बुद्धि, समय, साधन आदि का अपव्यय होता है। इससे प्रतिभा घटती है। यथा–

अहं पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणाऽऽलस्सएण य।।

1. अभिमान 2. क्रोध 3. प्रमाद 4.रोग 5. आलस्य से शिक्षा प्राप्त नहीं होती है।

पोथी पढ–पढ जग मुँआ पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम (आत्मा) का पढे सो पंडित होय।।
मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते।।

1. गर्व 2.दुर्वचनी 3. हठग्राही 4. अप्रिय बोलने वाला और 5. हितकारी उपदेश को नहीं मानने वाला यह पांचों लक्षण मूर्ख के चिन्ह हैं क्योंकि इससे प्रतिभा प्रखर, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, स्व–परोपकारी, रचनात्मक कार्य करने वाली नहीं होती है।

भारत में प्रतिभा–प्रतिभावान् की दुर्दशा एवं प्रतिभा पलायन

प्रतिभा के उपर्युक्त विभिन्न आयामों का प्रायोगीकरण भारत में प्रायः सर्वत्र कम होता है या नहीं होता है या कथंचित् विपरीत भी होता है। इसलिए भारत जैसे प्राचीन समृद्ध सांस्कृतिक विश्वगुरु वाला देश जिस की जनसंख्या पृथ्वी की जनसंख्या के 1/6 भाग है वहाँ पर आधुनिक ज्ञान–विज्ञान, राजनीति, कानून, सेवा, परोपकार, दान, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान आदि आदि पृथ्वी की अपेक्षा 1/100 भी नहीं है। इतना ही नहीं भारत, में प्रतिभा का सम्मान, सदुपयोग, सहयोग समुचित नहीं होने के कारण प्रतिभावान् विदेश पलायन कर लेते हैं जिससे प्रतिभा की और भी कमी एवं दुर्दशा हो रही है। इसका एक छोटा सा उदाहरण 2007 के राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर का 10वीं का परीक्षा परीणाम 45.75% रहा। फेल बच्चों में प्रायः 60% बच्चे गणित में हैं। इस कक्षा में 1,02,000 विद्यार्थियों को पूरक घोषित किया गया। इनमें से 76,176 विद्यार्थी गणित विषय में घोषित किये गए हैं। यह भी परिणाम यथार्थ नहीं हैं। उपर्युक्त प्रतिशत से भी और अधिक बच्चे फेल हुए हैं। यह सब तो तिकडमबाजी से होता है। केवल राजस्थान में ही 1,199 विद्यार्थियों का परिणाम निरस्त कर दिया

गया क्योंकि इन्हें सामूहिक नकल का दोषी पाया गया तथा मुख्य परिणाम घोषित करते समय 246 का परिणाम निरस्त हुआ था। अब तक बोर्ड परीक्षा के समय अनुचित साधनों का प्रयोग करने वाले 10 वीं कक्षा के प्रायः पौने दो हजार विद्यार्थियों के परिणाम निरस्त कर चुका है। इनमें कुछ विद्यार्थी ऐसे भी हैं जिन्हें वर्ष–2008 की वार्षिक परीक्षा में शामिल होने से भी वंचित किया गया है। ऐसी ही कमी–वेशी दुर्दशा पूर्ण भारत में है तथा विशेषतः उत्तर भारत में है। सौराष्ट्र विश्वविद्यालय में एम.ए. के छात्र अमित ने वि.वि. के परीक्षा निर्देशक जगदीश को पत्र भेजकर सवाल किया कि जब कि मैंने फेल होने की इच्छा से उत्तर पुस्तिका में टी.वी. सीरियल की कहानियाँ एवं मित्रों के नाम लिखा था। मई 2007 में हुई परीक्षा में मेरे पहले तीन पेपर बिगड गए। मैंने चौथे पेपर में फेल होने का मन बना कर केवल 40% प्रश्नों के जबाब दिए वो भी ऊटपटांग। इसके बावजूद मुझे 36 अंक देकर पास कर दिया गया है। अब वि. वि. को जवाब देते नहीं बन रहा है।

हिरणमगरी सेक्टर 11 स्थित आलोक सीनियर सैकंडरी स्कूल के 12 वीं कक्षा के छात्र अर्पित की गुरुवार सुबह एमबी अस्पताल में मौत हो गयी। टीचर इंद्रा सामर द्वारा डंडे से पिटाई के बाद उसे यहाँ भर्ती कराया गया था। मेडिकल बोर्ड ने मौत का कारण अंदरूनी चोट बताया है। पुलिस ने मृतक के पिता की रिपोर्ट पर हत्या का मामला दर्ज कर लिया है। आरोपी टीचर परिवार सहित फरार हो गई है। कुछ आक्रोशित छात्रों ने सामर के सेक्टर 11 स्थित मकान में तोडफोड की। अभिभावकों ने स्कूल पर प्रदर्शन किया। सुभाष नगर निवासी छात्र अर्पित पुत्र संपतराज कावडिया के परिजनों के अनुसार 26 जुलाई को टीचर इंद्रा सभार ने उसकी डंडे से जोरदार पिटाई की थी। तबीयत बिगडने पर उसे 1 अगस्त को एमबी अस्पताल में भर्ती करवाया गया। सभी छात्रों के अनुसार सामर मैडम को बिना बात पिटाई करने की आदत है। यूनिट टेस्ट के दौरान टीचर इंद्रा सामर ने अर्पित को पैर बैंच के अन्दर लेने के लिए कहा। उसके ऐसा नहीं करने पर गुस्साई टीचर ने अर्पित के सीने, पसलियों, हाथ–पैर पर डंडे बरसाए। छात्र अभिमन्यु ने बताया कि क्लास की बैंच छोटी है, इसलिए अर्पित का एक पैर बाहर निकला हुआ था।

राजधानी के जेएलएन मार्ग पर स्थित शिक्षा संकुल परिसर के पंप हाउस में व्यभिचार के अड्डे का पुलिस ने बुधवार रात पर्दाफाश कर दिया। इस संबंध में दो युवतियों सहित छह लोगों को गिरफ्तार किया गया है। पुलिस ने गुरुवार शाम आरोपियों को एक दिन के रिमांड पर ले लिया। छापे में पंप हाउस में एक पलंग, जमीन पर लगा बिस्तर, बीयर व शराब की खाली बोतलें, गर्भ निरोधक व कैमरा मिला। इसके अलावा खाना बनाने का सामान व बर्तन भी मिले। पंप हाउस के पास गड्ढे में शराब की खाली बोतलें व अन्य आपत्तिजनक वस्तुएं मिली।

ऐसा ही फेल हुई मंत्री की पुत्री को पास करना, रुपये लेकर पास करना, ट्यूशन पढने वालों को अधिक नम्बर देकर पास करना, भ्रष्टाचार से डिग्री के जाली

प्रमाण पत्र देना, 5वीं–6वीं कक्षा तक के बच्चों के भी हस्ताक्षर नहीं कर पाना, हिन्दी पुस्तक से भी शुद्धता से नकल नहीं कर पाना आदि शैक्षणिक कमियाँ हैं। इसके साथ–साथ इससे भी अधिक नैतिक, चारित्रिक, व्यवहारिक कमियाँ, विकृतियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं। भले भारत में साक्षरता दर बढा है, आर्थिक विकास हो रहा है किन्तु उपर्युक्त कमियों के कारण यथार्थ से विकास का दर कम है परन्तु विनाश का दर अधिक है।

लोग कहते हैं.. माँ–बाप कहते हैं.. खूब पढो.. खूब तरक्की करो.. खूब कमाओ.सुख से जीओ।.. मैंने देखा है पडे लिखों को.. शिखर चढने वालों को.. कमाने वालों को.किन्तु.. देखा नहीं हंसते,... सुख से जीते किसी को.. सभी ढूंढ रहे हैं.. सुख को .. यहाँ वहाँ.. शायद ही खोज पाएँ.. इस जन्म में... यही वरदान है.. हमारी नई शिक्षा का.. आदमी बंधता है.. केवल पेट से.. शरीर से.. बुद्धि से. पढते–पढते.. रटते–रटते.. कोरे विषयों को.. बनते–बनते.. एक विशेषज्ञ.. रहता है.. एक ढाँचा.. मानव आकृति का.. रूखा–सूखा.. हृदय विहीन.. निष्प्राण हो जाता हैं.. उसके भाव.. सूख जाता है.. उनका मन.. किताबों में.. दिखता नहीं.. कहीं भी आदमी.. विषय होता है.. महत्वपूर्ण.. उसके लिए.आदमी नहीं.. कहाँ दिखते हैं.. प्राण.. डाक्टर को भी मानव शरीर में.. शिक्षा में.. खो गए है.. अध्याय.. मन और आत्मा के.... इनके बिना.. आदमी बन रहा.. पाषाण–पुरुष.. संवेदनहीन.. एक प्रतिनिधि बस.. अर्थ युग का.. धर्म और मोक्ष... विषय है मानव के.. निकल गए.. शिक्षा के बाहर काम और अर्थ बनगए.. विध्वंसकारी.. पूरे समाज के.. जी रहा है.. खुद से बेखबर.. आदमी, जैसे.. 'मेरे बिना मैं'.. यांत्रिक बन गया हो। (गुलाब कोठारी)

व्यक्ति से लेकर सरकार, विद्यार्थी से लेकर शिक्षा विभाग को, इस विनाश को रोकने के लिए एवं सर्वोदय के लिए समग्रक्रान्ति करने की अनिवार्यता है। अन्त में The essence of education is that is should be religious with good character.

7) मन्यमाना सच्चा–अच्छा–ऊँचा–

सत्य, समता, शान्ति, सादा,जीवन–उच्च विचार, सद्व्यवहार आदि ही यथार्थ से सच्चा, अच्छा ऊँचा है। परन्तु प्रायः प्रत्येक व्यक्ति मन्यमाना स्वयं को सच्चा, अच्छा, ऊँचा मानता है, जताता है, बताता है यद्यपि वह उन सबसे रहित होता है। इतना ही नहीं दूसरों की सच्चाई–अच्छाई–ऊँचाई से भी घृणा करता है। इस परिस्थिति में वह सच्चाई आदि को कैसे प्राप्त कर सकता है।

अध्याय–7

जैन धर्म का आध्यात्मिक–वैज्ञानिक–विश्वशान्तिकर स्वरूप

जैनधर्म वस्तुतः वस्तुस्वभावात्मक, अनेकान्तमय, विश्वकल्याणकारी, अहिंसामय, साम्यवादी, अपरिग्रहवादी, वैज्ञानिक, गणितीय, वैश्वीक, सार्वभौम, परम स्वतंत्र, सहिष्णु, प्राकृतिक आदि अनेक गुण–धर्म, विशेषताओं से युक्त है, तथापि इस लघु लेख में जैन धर्म के (1) आध्यात्मिक (2) वैज्ञानिक (3) विश्वशान्तिकर पक्षों का संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ क्योंकि इन पक्षों में अन्यान्य पक्ष भी गौण रूप से समाहित हैं तथा इसकी आवश्यकता सार्वकालीन एवं सार्वभौम है।

1. जैन धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप–

जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक जीव समान, शाश्वतिक, प्राकृतिक, मौलिक तथा द्रव्यतः अनन्त गुण– धर्म–शक्ति–विभूति से युक्त है। प्रत्येक भव्य जीव अपनी साधना के बल पर क्रम विकास करता हुआ स्व में निहित अनन्त गुण–धर्म–शक्ति–विभूति को अभिव्यक्त करके पूर्ण स्वतंत्र (मुक्त) पवित्र, अनन्त ज्ञानी, अनन्त सुखी, अनन्त वीर्य आदि गुण सम्पन्न बन जाता है। ऐसा जीव पुनः अनन्त काल तक कभी भी अपवित्र नहीं होता है जिससे वह अनन्त काल तक मुक्त रहकर ही अनन्त ज्ञानादि गुणों से युक्त रहता है। इस अवस्था में अनन्त ज्ञान, शक्ति होने पर भी राग–द्वेष, मोह, कर्तृत्व भाव नहीं होने के कारण सिद्ध–शुद्ध जीव किसी प्रकार के बाह्य कर्ता–भर्ता–हर्ता रूप कार्य नहीं करते हैं। जैनधर्म में इसी अवस्था से युक्त जीव को सिद्ध, बुद्ध, ईश्वर, परमात्मा, परमज्योति, सत्यंशिवंसुन्दरम्, सच्चिदानंदम् आदि विशेषण से जाना जाता है। इसलिए जैन धर्मानुसार भव्यजीव भगवान् की भूत अवस्था है और भगवान् भव्य जीव की भावी अवस्था है। अतः भगवान् बनते हैं, न कि भगवान् अवतरित होते हैं। भले भावी भगवान् अवतरित होते हैं।

उपर्युक्त गुण–धर्म वाला जीव भले शक्ति की अपेक्षा भगवत् स्वरूप है परन्तु अनादि कर्म सन्तति के कारण संसार में चारों गतियों में 84 लाख योनियों को धारण करता हुआ अनन्त दुःखों को भोगता हुआ अनन्त जन्म–मरण को प्राप्त करता है। ऐसा संसारी भव्य जीव भी योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव को प्राप्त करके क्रमशः आध्यात्मिक विकास करता–करता परम विकास स्वरूप परमात्मा बन जाता है। इस विकास क्रम का वर्णन जैन धर्म में अत्यन्त ही वैज्ञानिक एवं गणितीय पद्धति से जीव समास–मार्गणा–गुणस्थान आदि के माध्यम से सविस्तार किया गया है। ऐसा वर्णन मुझे अभी तक देश–विदेश के किसी भी धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि में नहीं मिला है।

उपरोक्त कारणों से प्रत्येक जीव मौलिक, स्वतंत्र, समान गुण–धर्म–शक्ति वाला होने से किसी भी जीव को कष्ट देना, आधीन बनाना, हत्या करना, अन्य किसी भी जीव का आध्यात्मिक तथा यथायोग्य नैतिक अधिकार नहीं है जब तक कि कोई

जीव अपना आध्यात्मिक तथा यथायोग्य नैतिक गुण–धर्म–कर्म से विपरीत आचरण नहीं करता है। किसी जीव को क्षति पहुँचाने का अर्थ है स्वयं को, अन्य जीव को तथा प्रकृति को क्षति पहुँचाना। स्व–पर–ब्रह्माण्ड को क्षति नहीं पहुँचाने के लिए तथा आध्यात्मिक–मानसिक–शारीरिक विकास के माध्यम से इह–परलोक सुखमय बनाने के लिए जैन धर्म में सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्र रूपी मोक्षमार्ग, अहिंसा–सत्य–अचौर्य–ब्रह्मचर्य–अपरिग्रह रूपी व्रत, उत्तम क्षमा–मार्दव–आर्जव–सत्य–शौच–संयम–तप–त्याग–आकिंचन्य–ब्रह्मचर्य रूपी सार्वभौम धर्म का विधान किया गया है। जैन धर्म के अन्य रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार, नियम–उपनियम, पंथ–मत–परम्परा, पूजा–पाठ, खान–पान, वेश–भूषा, कृषि, वाणिज्य, सेवा आदि जीविका निर्वाह के साधन से लेकर जैन गृहस्थ, श्रावक से लेकर साधु–साध्वी आदि के समस्त मन–वचन–काय तथा कृत–कारित–अनुमत की प्रवृत्ति उपरोक्त सम्यग्दर्शनादि से यथायोग्य अनुसृत होती है। यदि ऐसा नहीं है तो वह योग्य नहीं है, दोष कारक है। जैन धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप के प्रतिपादन कुछ गाथा, सूत्र निम्नोक्त हैं।

धम्मो वत्थु सहावो खमादि–भावो य दस–विहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो।। 478 स्वा. का. अनु.

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं दस प्रकार के क्षमादि भावों को धर्म कहते हैं। रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और जीवों की रक्षा करने को धर्म कहते हैं। अर्थात् यहाँ आचार्य ने धर्म के विविध स्वरूपों को बतलाया है। जीवादि पदार्थों के स्वरूप का नाम धर्म है। जैसे जीव शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वरूप है। यही चैतन्य उसका धर्म है। अग्नि का स्वरूप उष्णता है। यही उसका धर्म है तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य रूप आत्म परिणाम को भी धर्म कहते हैं। इसी को शास्त्रों में धर्म के दस भेद कहा है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप तीन रत्नों को भी धर्म कहते हैं तथा सब प्रकार के प्राणियों की रक्षा करने को भी धर्म कहते हैं क्योंकि ऐसा कहा है कि धर्म का लक्षण अहिंसा है।

जो रयण–त्तय–जुत्तो खमादि–भावेहिं परिणदो णिच्चं।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो।।392 स्वा. का. अनु.

जो रत्नत्रय से युक्त होता है, सदा उत्तम क्षमा आदि भावों से सहित होता है और सब में मध्यस्थ रहता है, वह साधु है और वही धर्म है अर्थात् जो व्यवहार और निश्चियरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का धारक होता है। उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों को सदा अपनाये रहता है और सुख–दुःख, तृण–रत्न, लाभ–अलाभ और शत्रु–मित्र में समभाव रखता है, न किसी से द्वेष करता है और न किसी से राग करता है, वह साधु है, और वही धर्म है क्योंकि जिसमें धर्म है, वही तो धर्म की मूर्ति है, बिना धार्मिकों के धर्म नहीं होता है।

विशेष जिज्ञासु (1) आध्यात्मिक मनोविज्ञान–इष्टोपदेश (2) सत्यसाम्य सुखामृतम् (प्रवचनसार) (3) विश्व द्रव्य विज्ञान(द्रव्य संग्रह) आदि का अध्ययन करें।

2. जैन धर्म का वैज्ञानिक (गणितीय) स्वरूप

विज्ञान का मतलब केवल आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा शोध–बोध–खोज–आविष्कृत किये गये सिद्धान्त तथा उपकरण ही नहीं है परन्तु विशेष ज्ञान या क्रमबद्ध सुव्यवस्थित किसी भी प्रकार का सत्य–तथ्यात्मक ज्ञान ही यथार्थ से विज्ञान है। परम यथार्थ विज्ञान तो स्व–आत्मा को समस्त दुःखों से, शाश्वतिक रूप से समग्रता से पृथक करना है जिसे वीतराग विज्ञान या आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं। ऐसा परम विज्ञान का तो शुभारम्भ प्रायः आधुनिक विज्ञान में हुआ ही नहीं है। केवल इस ही आध्यात्मिक विज्ञान की तुलना में आधुनिक समस्त विज्ञान की उपलब्धियाँ भी छोटी है। इस महान विज्ञान के साथ–साथ जैन धर्म में वर्णित विश्व–विज्ञान, द्रव्य विज्ञान, अनेकान्त सिद्धान्त, परमाणु सिद्धान्त, गतिसिद्धान्त, कार्यकारण सिद्धान्त, अलौकिक गणित, पर्यावरण सुरक्षा, कर्मसिद्धान्त, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, भोजन–पद्धति, ध्यान, क्रमविकास तथा परम विकासवाद भी आधुनिक विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। जैन धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रमाण है उनकी सार्वभौमिकता सर्व जीव हितकारी सर्व जीव सुखकारी पद्धति, गणितीय पद्धति। बहुत ही कम लोगों को मालूम है कि जैन धर्म के हर सिद्धान्त को गणितीय आधार पर सिद्ध किया गया है। गणित में वर्णन होना उस सिद्धान्त की सटीकता तथा प्रामाणिकता को सिद्ध करता है। जैन धर्म में अंक गणित, रेखा गणित आदि सामान्य लौकिक गणित का तो वर्णन है ही इसके साथ–साथ असामान्य अलौकिक गणित का भी सविस्तार वर्णन है। अलौकिक गणित के द्वारा सूक्ष्म परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक, सूक्ष्म निगोदिया जीव के भव, ज्ञान, दुःख आदि से लेकर परमात्मा के अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि तक की गणना की गई है तथा की जाती है। आधुनिक विज्ञान के प्रारम्भ से भी हजारों वर्ष पूर्व में वर्णित कुछ लिखित गाथा–सूत्र निम्न में उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ कि जैन धर्म मूलतः पहले से ही वैज्ञानिक है तथा आधुनिक विज्ञान का किसी भी प्रकार से नकल करने वाला नहीं है।

अनन्त गुणात्मक द्रव्य में परिणमन

कालाइ–लद्धि–जुत्ता णाणा–सत्तीहि संजुदा अत्था।
परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं।।219 स्व. का. अ.

कालादि लब्धियों से युक्त तथा नाना शक्तियों वाले पदार्थों को स्वयं परिणमन करते हुए कौन रोक सकता है? अर्थात् सभी पदार्थों में शक्तियाँ हैं। वे पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भवरूप सामग्री के प्राप्त होने पर स्वयं परिणमन करते हैं, उन्हें उससे कोई नहीं रोक सकता है। जैसे–भव्यत्व आदि शक्ति से युक्त जीव काललब्धि आदि के प्राप्त होने पर मुक्त हो जाते हैं। भातरूप होने की शक्ति से युक्त चावल ईंधन, आग, वटलोही, जल आदि सामग्री के मिलने पर भातरूप हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जीव को मुक्त होने से और चावलों को भातरूप होने से कौन रोक सकता है।

व्यवहार काल : जीव–पुद्गल के परिणमन

जीवाण पुग्गलाणं सुहुमा बादरा य पज्जाया।
तीदाणागद–भूदा सो ववहारो हवे कालो।।220

जीव और पुद्गल द्रव्य की जो सूक्ष्म और बादर पर्याय अतीत, अनागत और वर्तमानरूप हैं, वही व्यवहारकाल है अर्थात् एक द्रव्य की जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थ पर्याय तथा व्यंजन पर्याय होती हैं, उतनी ही द्रव्य की स्थिति होती है। आशय यह है कि प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय परिणमन होता है। वह परिणमन ही पर्याय है। एक पर्याय एक क्षण अथवा एक समय तक रहती है। एक समय के पश्चात् क्रम अनादिकाल से अनन्त काल तक चलता रहता है। अतः प्रत्येक द्रव्य अनादि अनन्त होता है।

त्रैकालिक पर्यायें

तेसु अतीदा णंता अणंत–गुणिदा य भावि–पज्जाया।
एक्को वि वट्टमाणो एत्तिय–मेत्तो वि सो कालो।।221

द्रव्यों की उन पर्यायों में से अतीत पर्याय अनन्त हैं, अनागत पर्याय उनसे अनन्तगुनी हैं और वर्तमान पर्याय एक ही है। सो जितनी पर्याय हैं, उतना ही व्यवहार काल है।

परिणमन के कार्यकारण सिद्धान्त

पुव्व–परिणाम जुत्तं कारण–भावेण वट्टदे दव्वं।
उत्तर–परिणाम–जुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा।।222

पूर्व परिणाम सहित द्रव्य कारण रूप है और उत्तर परिणाम सहित द्रव्य नियम से कार्यरूप है।

अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय परिणमन होता रहता है, यह पहले कहा गया है। उसमें से पूर्वक्षणवर्ती द्रव्य कारण होता है और उत्तरक्षणवर्ती द्रव्य कार्य होता है। जैसे–लकडी जलने पर कोयला हो जाती है और कोयला जलकर राख हो जाता है। यहाँ लकडी कारण है और कोयला कार्य है तथा कोयला कारण और राख कार्य है।

तीनों काल के कार्यकारण सिद्धान्त

कारण–कज्ज–विसेसा तीसु वि कालेसु हुंति वत्थूणं।
एक्केक्कम्मि य समए पुव्वुत्तर–भावमासिज्ज।।223

वस्तु के पूर्व और उत्तर परिणाम को लेकर तीनों ही कालों में प्रत्येक समय में कारण कार्य भाव होता है।

अर्थात्– वस्तु प्रति समय उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्यात्मक होती है। तत्त्वार्थसूत्र में उसे ही सत् कहा है जिसमें प्रति समय उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होता है।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु

संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्व–दव्वाणि।
सव्वं पि अणेयंतं तत्तो भणिदं जिणेंदेहिं।।224

सब द्रव्य तीनों ही कालों में अनन्तानन्त हैं। अतः जिनेन्द्रदेव ने सभी को अनेकान्तात्मक कहा है।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु ही कार्यकारी

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण।
बहु–धम्म–जुदं अत्थं कज्ज–करं दीसदे लोए।।225

जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है; क्योंकि लोक में बहुत धर्मयुक्त पदार्थ ही कार्यकारी देखा जाता है अर्थात्–अनेक धर्मात्मक वस्तु ही कोई कार्य कर सकती है। इसी से पूज्यपाद स्वामी ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण प्रथम सूत्र "सिद्धिरनेकान्तात्" रखा है जो बतलाता है कि किसी भी कार्य की सिद्धि अनेकान्त से ही हो सकती है।

उपर्युक्त वर्णन में द्रव्य की अनन्त गुणात्मकता, शाश्वतिकता, परिणमनता, कार्यकारण पद्धति, अनेकात्मकता, कार्य की बहुआयाम पद्धति आदि निहित हैं। विशेष परिज्ञानार्थ मेरी (1) अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से परमात्मा (2) ब्रह्माण्ड–आकाश–काल एवं जीव : अनन्त आदि कृतियों का अध्ययन करें।

3. जैन धर्म का विश्वशान्तिकर स्वरूप–

जैनधर्म के आध्यात्मिक–वैज्ञानिक स्वरूप से ही सैद्धान्तिक रूप से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि जैन धर्म विश्व शान्तिकर है क्योंकि जहाँ आध्यात्मिककता है, वहाँ भाव की पवित्रता एवं व्यवहार की श्रेष्ठता होगी तथा जहाँ वैज्ञानिकता है, वहाँ सत्यता एवं प्रामाणिकता होगी ही और जहाँ पर यह गुण होंगे वहाँ पर शान्ति अवश्यम्भावी है। इसके साथ–साथ जैन धर्म "वत्थु सहावो धम्मो" होने से तथा समस्त विश्व वस्तु स्वरूप होने से जैन धर्म विश्व धर्म है अर्थात् जैन धर्म विश्व के प्राकृतिक गुण धर्म को स्वीकार करने के कारण या यथार्थ से कहें तो विश्व के प्राकृतिक गुण धर्म को ही जैन धर्म संज्ञा से कथन करने के कारण जैन धर्म विश्व धर्म है। जैन धर्म का यथार्थ नाम है– वस्तुस्वभावात्मक धर्म, अनेकांतधर्म, जीव धर्म, अर्हत् धर्म, रत्नत्रय धर्म, जीवरक्षा धर्म, सत्य धर्म, आत्म धर्म आदि–आदि।

जैन धर्म प्रत्येक जीव को श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, परम धर्मरूप में स्वीकार करके जीव की उपादेयता, उपयोगिता की उद्घोषणा करता है। यथा–

उत्तम–गुणाण धामं सव्व–दव्वाण उत्तमं दव्वं।
तच्चाण परम–तच्चं जीवं जाणेह णिच्छयदो।। 204 स्वा. का. अ.

जीव ही उत्तम गुणों का धाम है, सब द्रव्यों में उत्तम द्रव्य है और सब तत्त्वों में परम तत्त्व है, यह निश्चय से जानो।

अर्थात् निश्चय नय से अपनी आत्मा को जानो। यह आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि गुणों का अथवा सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य, अव्याबाध इन आठ गुणों का, अथवा 84 लाख गुणों अथवा अनन्त गुणों का आधार है। सब द्रव्यों में यही उत्तम द्रव्य है क्योंकि अजीव

द्रव्य–धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल तो जड हैं, अचेतन हैं किन्तु जीव द्रव्य चेतन है, वह वस्तुओं का प्रकाशक अर्थात् जानने देखने वाला है; क्योंकि उसका लक्षण उपयोग है। इसी से जीव द्रव्य ही सर्वोत्तम है तथा जीव ही सब तत्त्वों में परम तत्त्व है।

उपरोक्त कारणों से विश्व के प्रत्येक जीव की सुरक्षा, समृद्धि शान्ति, मुक्ति ही जैन धर्म का अन्तिम परम लक्ष्य है। यथा–

सत्त्वेशु मैत्रीं गुणिशुप्रमोदं, क्लिष्टेशु जीवेशु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे भगवान् ! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुण भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे।

आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तनं भाक्तिस्त्याग तपसी च धर्माधिगतोपायाः (नीतिवाक्यामृत)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण)–चिन्तवन करना, भाक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तप चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

'सर्वेसत्वेशु हि समता सर्वा चरणानां परमं चरणम्'।।

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना एवं उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्त्तव्यों में सर्वोतम कर्त्तव्य है।

'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख माप्नुयात्।।''

सम्पूर्ण जीव जगत् सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहे। कोई भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करे।

मा कार्षित् कोऽपि पापानि, मा च भूत् कोऽपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषां, मति मैत्री निगद्यते।।

कोई भी पाप कार्य को न करें, कोई भी दुःखी न रहे, जगत् दुःख, कष्ट, वैरत्व से रहित हो जावे इस प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

कायेन, मनसा वाचा सर्वेष्वपि च देहिषु।
अदुःख जननी वृत्ति मैत्री, मैत्रीविदां मता ।।

काय, मन, वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे, इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री व्यवहार कहते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने भी विश्व कल्याण के लिए जो भावना के सूत्र दिये हैं, वे निम्न प्रकार हैं–

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले–काले च सम्यक् वर्षतः मघवा व्याधयो यान्तु नाशं।।
दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां तास्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचकं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यं प्रदायि।।15 शान्ति भक्ति

सम्पूर्ण प्रजा क्षेम, कुशल होवें, धार्मिक राजा (नेता) शक्ति सम्पन्न होवें,

समय–समय पर इन्द्रदेव (बादल) सुवृष्टि करें, रोग नाश को प्राप्त होवें, दुर्भिक्ष, चोरी, डकैती, आतंकवाद, दुःख, कलह, अशान्ति एक क्षण के लिए भी इस जीवजगत् में रहें। सब जीवों को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र (क्षमा, अहिंसा, दया, मैत्री, संगठन आदि) सतत प्रवर्तमान रहे।

जीव जिणवर से मुणहि जिणवर जीव मुणहि।
ते समभावपरट्ठिया लहु णिव्वाणं लहई।।

जो जीव को जिनवर एवं जिनवर को जीव मानता है, वह परम साम्य भाव में स्थित होकर अतिशीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। यह है सर्वोत्कृष्ट, साम्यवाद, गणतन्त्रवाद, समाजवाद, लोकतन्त्रवाद।

स्वसंघ के आदर्शों के द्वारा जैन धर्म का प्रचार–प्रसार विश्व स्तर पर संभव (आचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव के संघ की नियमावली)

(1) संघ में चातुर्मास, केशलोंच, (दीक्षाजयन्ति, आचार्यपद जयन्ति, जन्मजयन्ति आदि नहीं मनेगी) की आमन्त्रण पत्रिका नहीं छपेगी। वैसे गुरुदेव इन पत्रिकाओं को पहले से ही छपवाने के पक्ष में नहीं थे लेकिन अगर श्रावक अपनी स्वेच्छा व भक्ति से चातुर्मास की पत्रिका छपवाते भी हैं तो गुरुदेव व संघस्थ उनको नहीं भेजेंगे, श्रावक ही भेजेंगे। इसलिए सूचना हेतु सामान्य व कम मात्र में ही श्रावक पत्रिका छपाये। संगोष्ठी, शिविर, दीक्षामहोत्सव आदि विशेष कार्यक्रम की पत्रिका के लिए उपर्युक्त प्रावधान नहीं है।(2) प्रवचन/पूजन–विधान/पंचकल्याणक/मठ–मन्दिर–मूर्तिनिर्माण/वेदी प्रतिष्ठा/शिविर/संगोष्ठी/साहित्यप्रकाशन/देश–विदेश में धर्म प्रचार कार्य/विश्वविद्यालयों में शोधकार्य/विश्वविद्यालयों में आचार्य कनकनन्दी साहित्यकक्ष की स्थापना इत्यादि कार्य पहले से ही स्वेच्छा सहजता–सरलता से होते थे तथा आगे भी होंगे। (3) जिससे श्रावक पर विशेष आर्थिक बोझ पडता हो, ऐसे कार्य स्वयं श्रावक अपनी शक्ति–भक्ति–स्वेच्छा से करते हैं तो स्वयं करें; संघ ऐसे कार्यों को करने हेतु दबाब नहीं डालेगा। (4) आचार्य भगवन् की अनुमति के बिना संघ के कोई भी सदस्य (साधु/साध्वी, ब्रह्मचारी–ब्रह्मचारिणी–श्रावक) किसी भी प्रकार की वस्तु श्रावक से नहीं माँगेंगे एवं न आदेश देंगे। (5) किसी भी प्रकार की बोली हेतु संघ दबाब नहीं डालेगा। (6) संस्था के विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण आवश्यकता के बिना संघ में नहीं, संस्था में ही रहेंगे। (7) संकीर्ण पंथवादी, अर्थलोलुपी, अयोग्य, अनुशासनविहीन, अविनयी गृहस्थ, विद्वान्, पंडित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, साध्वी, साधु (स्व या परसंघ) के लिए भी संघ में अनुमति नहीं है। उपयुक्त गुणों से युक्त व्यक्ति से लेकर साधुओं को संघ में स्वीकार्य करने का कार्य आचार्य गुरुदेव के निर्णय पर ही होगा। (8) संघ में संकीर्ण मतवादी, पंथवादी, परम्परावादी, संतवाद, ग्रन्थवाद, जातिवाद, राष्ट्रवाद से परे उदार सहिष्णु, सनम्रसत्यग्राही, अनेकान्तमय वैज्ञानिक पद्धति से स्व पर–विश्वकल्याणकारी विचार–व्यवहार–कथन लेखन–अनुसंधान–प्रचार–प्रसार को ही महत्व दिया जा रहा है, आगे भी दिया जायेगा। (9) जिस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिस्थिति, समाज में उपर्युक्त उद्देश्य एवं कार्य सम्पन्न होंगे, ऐसे क्षेत्रादि विशेषतः योग्य ग्रामादि, शहरादि में ही संघ का विहार, निवास, चातुर्मास अधिक से अधिक होगा। (10) संघ के सभी सदस्य स्वावलम्बी बनेगे यानि अपना कार्य स्वयं करेंगे तथा स्वानुशासी यानि संघ के नियम–कानून–अनुशासन का पालन करेंगे एवं प्रत्येक कर्त्तव्य समय पर करेंगे। (11) स्वास्थ्य की विशेष समस्या के कारण अपवाद से जो उपचार के रूप में पंखादि, औषधि आदि का प्रयोग होता है, उस समस्या का समाधान होने के बाद उसका प्रयोग नहीं करना। (12) संघस्थ सभी सदस्य परस्पर में वात्सल्य, सेवा, सहयोग, स्थितिकरण, उपगूहन से युक्त होंगे।

आचार्य श्री कनक नन्दी जी गुरुदेव संसघ के विशेष कार्यक्रम (2007)

1. w.w.w. jainkanaknandhi. org
1. E-mail-info@jainkanaknandhi. org.
3. राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ–8
4. धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन-29
5. धार्मिक प्रशिक्षण कक्षाएँ–सैंकडों
6. स्वसंघ–परसंघके साधुओं के अध्ययन–अध्यापन के कार्यक्रम–सैंकडों
7. प्रश्न मंच एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, भजन, भाषण, सेवा–सैंकडों
8. बच्चों, युवक–युवतियों को संस्कारवान बनाना एवं उनसे आहार लेना–हजारों
9. हर क्षेत्र में अच्छे व्यक्ति को एवं संस्थाओं को पुरस्कृत करना–हजारों
10. हर विधा के वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्यों का सृजन एवं प्रकाशन 170ग्रन्थ (छह भाषाओं में अनेक संस्करण)
11. कम्प्यूटराइज्ड प्रतियोगिता–11)
12. अनेक विश्वविद्यालयों मे "आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्य कक्ष" की स्थापना।
13. गरीब, असहाय, रोगी, विपन्न मनुष्य एवं पशु–पक्षियों की सेवा–सहायता करना।
14. व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में समता–सुख–शान्ति–मित्रता,संगठन आदि की स्थापना के लिए प्रयास।
15. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान(बडौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलूम्बर, प्रतापगढ, मुंबई, अमेरिका, सागवाडा, गाजियाबाद)
16. धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर, अमेरिका)
17. जैन, हिन्दू, मुसलमान शोध छात्रों द्वारा आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्यों के ऊपर शोध (Ph.D)कार्य।
18. अमेरिका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देश–विदेश में स्व–वैज्ञानिक शिष्यों द्वारा धर्म प्रभावना।

संस्थान की नियमावली

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशक, द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियाँ दी जायेंगी। 2. ग्रन्थ प्रकाशक (द्रव्य दाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक–एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।
3. साधु–साध्वी, विशिष्ट विद्वत्जन और विशिष्ट धर्माआयतनों को पुस्तक निःशुल्क दी जायेगी।
4 संस्थान से संबन्धित कार्य कर्त्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक–एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।
5. संस्थान की वार्षिक सदस्यता केवल 501) रुपये एवं आजीवन सदस्यता 7001 रुपये है।

द्वितीय बार अमेरिका, इंग्लैण्ड में धर्मप्रचार के अनन्तर आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरूदेव के ग्रंथ विमोचन में भाग लेते हुए डॉ० कछाराजी एवं डॉ० अग्रवाल (भूतपूर्व वैज्ञानिक–अमेरिका) द्वारा वार्षिक सदस्य एवं चातुर्मास कमेटी के अध्यक्ष दिनेश जंगा को आचार्यश्री का साहित्य अर्पण करते हुए।

आचार्य श्री कनकनंदीजी द्वारा प्रदत्त द्वय मुनि दीक्षा के अवसर पर भाग लेते हुए दिगम्बर एवं श्वेताम्बर संप्रदायों के साधु–साध्वी तथा श्रावक–श्राविकाऐं (उदयपुर)

आचार्य श्री कनकनंदीजी के आशीर्वाद से द्वितीय बार अमेरिका में धर्मप्रचार के अवसर पर सिद्धाचलम् (न्यूजर्सी) में डॉ० कच्छाराजी इस मंदिर में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायों के भगवान की मूर्तियाँ हैं एवं सब अपनी–अपनी पद्धति से पूजा–आराधना करते हैं।

विज्ञान मेला में विज्ञान एवं वैज्ञानिक शोध संबंधी प्रवचन के पूर्व वैज्ञानिक मॉडलों के निरीक्षण के साथ–साथ उस संबंधी प्रश्न करते हुए आचार्य कनकनंदीजी ससंघ। (ग. पु. कॉ. सागवाड़ा)

Seema Printers, Udr # 0294-3295406